संपादन:
राजेश खिंदरी
माधव केलकर
रश्मि पालीवाल
सी. एन. सुब्रह्मण्यम
हृदयकांत दीवान
दीपक वर्मा

वितरण:
महेश बसेड़िया

अकादमिक सहयोग
स्निग्धा मित्रा
प्रमोद मैथिल

सहयोग:
गजेन्द्र सिंह राठौर
रामभरोस यादव
अनिल पटेल
बृजेश सिंह

शैक्षिक

संदर्भ

शिक्षा की द्वैमासिक पत्रिका
अंक-39, अगस्त-सितंबर 2001

संपादन एवं वितरण:
एकलव्य, कोठी बाज़ार
होशंगाबाद – 461 001
फोन: 07574 – 53518
ई-मेल: eklavyamp@vsnl. com
eklavyah@yahoo.com

एक प्रति: 15 रुपए
वार्षिक सदस्यता (6 अंक) : 75 रुपए
आजीवन सदस्यता: व्यक्तिगत 1000 रुपए।
संस्थागत 2000 रुपए।
(ड्राफ्ट एकलव्य के नाम से बनवाएं)

मुखपृष्ठ व पिछला कवर: अपने आसपास नज़र डालने पर प्रकृति में शायद सबसे ज़्यादा हरा रंग ही दिखाई देता है; और जिन पत्तियों के कारण यह हरियाली नज़र आती है उनमें विविधता तो देखिए – कहीं कटे-फटे किनारे तो कहीं एकदम सीधे वक्र, कहीं तीखी नोक तो कहीं नोक एकदम नदारद, कहीं लंबी छरहरी पत्तियां तो कहीं वृत्त जैसी गोल . . . । पत्ती का कोई भी पहलू ऐसा नहीं मिलेगा जिसमें विविधता न हो, इसीलिए यह सवाल कि आखिर यह सब विविधता क्यों? इस विषय पर विस्तृत लेख इस अंक में। मुखपृष्ठ व पिछले कवर पर इसी विविधता को प्रदर्शित करता हुआ एक पत्ता जिसमें डंठल पत्ते के बीच में से निकलता है।

इस अंक में निम्न किताबों से चित्र लिए गए हैं: ***नो योर बॉडी:*** *ट्रेवर वेस्टन एम. डी; प्रकाशक: मार्शल केवेंडिश।* ***कॉन्सेप्चुअल फिज़िक्स:*** *पॉल जी. हयुइट; प्रकाशक: लिटिल, ब्राउन एंड कम्पनी, बोस्टन।* ***प्रिंसिप्ल्स ऑफ एनेटॉमी एंड फिज़ियोलॉजी:*** *गेरार्ड जे. टोराटोरा; प्रकाशक: हारपर कोलिंस कॉलेज पब्लिशर्स।* ***बॉटनी फॉर डिग्री स्टुडेंट्स:*** *ए. सी. दत्ता; प्रकाशक: ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, दिल्ली।* ***द बुक ऑफ पॉपुलर साइंस;*** *प्रकाशक: ग्रोलियर इनकॉरपोरेटेड, न्यूयॉर्क।* ***लीव्स:*** *जी. टी. प्रेन्स एंड जेल बी. सेंडवेड; प्रकाशक: थेम्स एंड हडसन, लंदन।*

मानव संसाधन विकास मंत्रालय की एक परियोजना के तहत प्रकाशित
संदर्भ में छपे लेखों में व्यक्त मतों से मानव संसाधन विकास मंत्रालय का सहमत होना आवश्यक नहीं है।

संदर्भ सदस्यता अभियान

'संदर्भ' की सार्थकता तभी तक है
जब तक उसे पढ़ने वाले हैं।

संदर्भ को आप बरसों से जानते हैं, पढ़ते हैं,
संदर्भ के लिए कुछ करने का मौका आपके पास है।
अपने आसपास के स्कूलों, कॉलेजों, शिक्षकों,
अपने मित्रों को संदर्भ के बारे मे जानकारी दीजिए।
उन्हे संदर्भ पत्रिका का वार्षिक सदस्य बनाइए।

यदि आप संदर्भ के लिए पांच वार्षिक सदस्य बनाते हैं तो एक साल तक संदर्भ आपको बतौर उपहार भेजी जाएगी। दस सदस्य बनें ता दो साल, पंद्रह बनें तो तीन साल तक।

बस आपको इतना ही करना है कि आपके द्वारा बनाए गए पांच सदस्यों का सदस्यता शुल्क, नाम एवं पते हमारे पास भेजिए।

सदस्यता शुल्क आप मनीऑर्डर या बैंक ड्राफ्ट से भेज सकते हैं। बैंक ड्राफ्ट एकलव्य के नाम से बनवाएं।

ड्राफ्ट बनवाई या मनीऑर्डर का खर्च आप सदस्यता शुल्क में से काटकर शेष राशि भेज सकते हैं।

एकलव्य
कोठी बाज़ार, होशंगाबाद
म. प्र. 461001, फोन: 07574 - 53518
ई-मेल: eklavyah@yahoo.com

रंगरेज़ों से जुड़ा है लिटमस का इतिहास 11

प्रयोगशाला में लिटमस का उपयोग तो हम करते ही हैं। लिटमस, अम्ल और क्षार को पहचानने के लिए एक अत्यंत सुविधाजनक सूचक है। परन्तु लिटमस दरअसल है क्या? यह मिलता कहां से है? इसकी रासायनिक संरचना क्या है?

यदि लिटमस के इतिहास की तह में जाएं तो काफी दिलचस्प बातें पता चलती हैं मसलन पुराने ज़माने के रंगरेज़ लिटमस जैसे सूचकों के रंग बदलने के गुण का उपयोग कपड़ा रंगने के काम में करते थे।

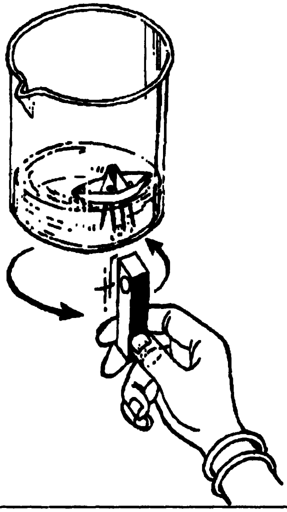

एक कागज़ की नाव बनाकर उसमें दो-तीन ऑलपिन लगा दीजिए। फिर पानी से भरे बीकर में नाव को तैरा दीजिए। बीकर को एक हाथ से पकड़कर दूसरे हाथ से एक छड़ चुंबक बीकर के चारों ओर धीरे-धीरे घुमाइए। जैसे-जैसे चुंबक को घुमाएंगे नाव भी घुमने लगेगी।

इस प्रयोग का इस्तेमाल आप कक्षा में चुंबक पाठ पढ़ाते हुए भी कर सकते हैं।

विद्युत और चुंबकत्व 33

अक्सर कक्षा में विद्यार्थी यह सवाल कर बैठते हैं कि लोहे में चुंबकत्व आता कहां से है? या चुंबक सिर्फ लोहा, निकल, कोबाल्ट जैसी धातुओं से ही क्यों बन पाता है? शिक्षकों को इन सवालों से लगातार जूझना पड़ता है। कई बार सवालों के जवाब भी नहीं मालूम होते। क्या करें ऐसे हालात में?

ऐसे सवालों के संदर्भ में कक्षा में चुंबकत्व पढ़ाते समय मददगार हो सकने वाली सामग्री के साथ-साथ, बच्चों को किस तरह चुंबकत्व का पाठ पढ़ाया जाए, इसके लिए कुछ सुझाव भी हैं इस लेख में।

विज्ञान, समाज और . . . 43

"कहते हैं न, अपने कल्चर के साथ पढ़ाई का क्या ताल्लुक। चूडियां पहनी हैं कभी? रंगीन कांच की। तो देखिए कि इस प्रकार का सवाल आपको किसी बाहर की किताब में नहीं मिलेगा। मेरी बहन की खेलते-खेलते, शरारत करते हुए तीन चूडियां टूट गईं – एक लाल, एक पीली और एक नीली। मैंने मां से इमामदस्ता लेकर उन्हें कूटकर चूरा बनाया क्योंकि मैं मांजा बनाने के लिए लुगदी बना रहा था। पर एक चीज़ मैंने देखी कि जब मैंने पीली चूड़ी का चूरा किया तो वह सफेद था, नीली का किया सफेद था, लाल का किया वो भी सफेद था, अब ये बताइए कि ऐसा क्यों? यह प्रश्न आपके जीवन के साथ जुड़ा हुआ है। ऐसे तरह-तरह के प्रश्न होते हैं। तो बताओ क्यों?"

ऐसे बहुत सारे प्रश्नों के उदाहरण लेते हुए विज्ञान और समाज के रिश्ते व उसमें शैक्षिक नवाचारों की भूमिका को टटोलता एक लेख।

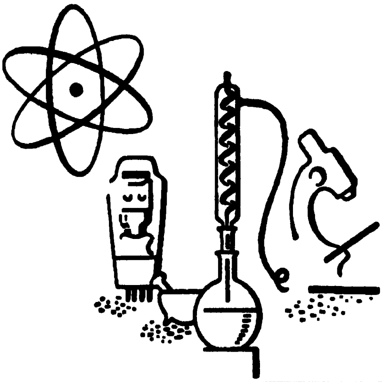

शैक्षिक संदर्भ

अंक 39 अगस्त-सितंबर 2001

इस अंक में

आपने लिखा. . . 6

रंगरेज़ों से जुड़ा. . . 11
सुशील जोशी

अच्छे सवाल कैसे . . . 16
कैरन हैडॉक

हम सांस कैसे लेते . . . 21
जे. बी. एस. हाल्डेन

सांस लेना, सांस . . . 27

विद्युत और चुंबकत्व . . . 33
प्रदीप गोठोस्कर

विज्ञान, समाज . . . 43
प्रोफेसर यशपाल

ज़रा सिर . . . 54

पत्तियों का रूप रंग . . . 55
किशोर पंवार

सवालीराम . . . 62

इतिहास का अध्यापन . . . 68
आर. एस. राजपूत

मेरे कुछ अवलोकन . . . 70
एंटोन वॉन ल्यूवेनहॉक

हमसफर . . . 77
सत्यजीत रे

चींटियों का पत्तीघर . . . 93
के. आर. शर्मा

संदर्भ से नाता जोड़िए

आजीवन सदस्यता

संदर्भ से बने रिश्ते को और स्थायित्व देने का एक सुनहरा मौका है – संदर्भ के आजीवन सदस्य बनकर।

* संदर्भ की आजीवन सदस्यता राशि **1000 रुपए** (व्यक्तिगत), **2000 रुपए** (संस्थागत) है। **अगली उपहार योजना** का लाभ लेने के लिए आपको यह राशि **31 दिसंबर 2001** से पहले भेजनी होगी।
* यह राशि आप एकलव्य के नाम बैंक ड्राफ्ट बनवाकर या चैक से भेज सकते हैं।
* आपकी राशि हमारे पास बतौर धरोहर जमा रहेगी। जब तक संदर्भ पत्रिका का प्रकाशन जारी रहेगा, संदर्भ पत्रिका आपको नियमित रूप से मिलती रहेगी।

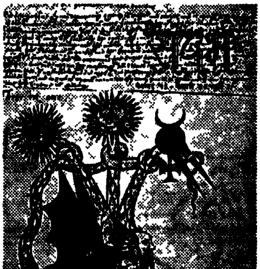

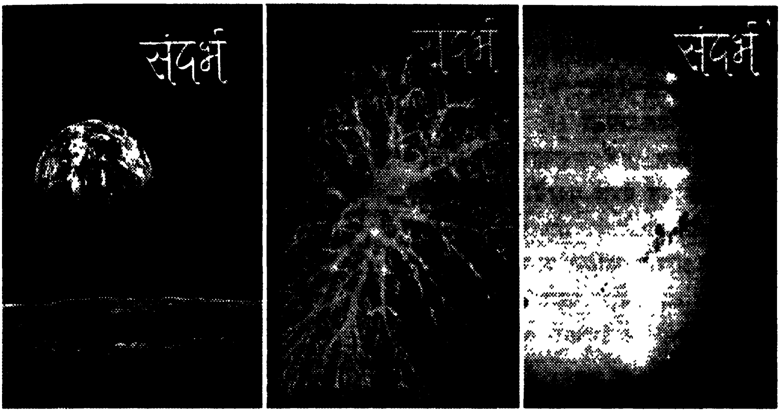

* संदर्भ का प्रकाशन अगले दस वर्ष में किसी भी कारण बंद होने की स्थिति में आपको बकाया राशि वापस लौटा दी जाएगी।

* यदि आजीवन सदस्यता लेने के बाद कभी भी आपको ऐसा लगता है कि संदर्भ आपके लिए पहले की तरह उपयोगी नहीं रही है तो आप बकाया राशि तीन साल के बाद कभी भी वापस ले सकते हैं।

आपके लिए उपहार:

यदि आप **31 दिसंबर 2001** से पहले आजीवन सदस्यता लेते हैं तो आपको संदर्भ के **सजिल्द संस्करण** खंड 4, 5 और 6 बतौर उपहार भेजे जाएंगे। यानी आपके पास होंगे संदर्भ के पूर्व प्रकाशित अंक भी। **यह उपहार योजना केवल 31 दिसंबर 2001 तक के लिए है।**

* और अधिक जानकारी के लिए इस पते पर संपर्क कीजिए:

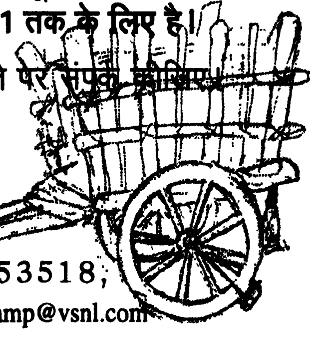

एकलव्य
कोठी बाज़ार, होशंगाबाद, म. प्र.
पिनः 461001, फोनः [illegible] 53518,
ई. मेल: eklavyah@yahoo.com या eklavyamp@vsnl.com

आपने लिखा

अंक 37 में सवालीराम का सवाल 'ओज़ोन परत में छेद कैसे बना' पढ़ा। विज्ञान के अध्यापकों और विद्यार्थियों को सामान्यतः यह जानकारी तो होती ही है कि यह परत पराबैंगनी किरणों को रोककर पृथ्वी पर मौजूद जीवन को सुरक्षित और विकसित करती है और इस परत को क्लोरो फ्लोरो कार्बन की वजह से नुकसान पहुंचता है।

सवालीराम के जवाब में एक वाक्य थोड़ा खटक रहा था – 'जिस तरह हीरा और ग्रेफाइट कार्बन के रूप हैं उसी तरह रासायनिक दृष्टि से ओज़ोन, ऑक्सीजन का अपरूप यानी आइसोटोप है।'

जहां तक मेरी जानकारी है 'अपरूप' अंग्रेज़ी के Allotrop का हिन्दी अनुवाद है; जिसका अर्थ है – किसी तत्व के दो या अधिक ऐसे रूप जिनके रासायनिक गुणों में समानता, पर भौतिक गुणों में भिन्नता हो। जबकि आइसोटोप का हिन्दी रूपांतर है समस्थानिक; जिसका अर्थ है – एक तत्व के ऐसे भिन्न परमाणु जिनका परमाणु क्रमांक समान हो परन्तु परमाणु भार भिन्न हो। कृपया स्थिति स्पष्ट कीजिए।

बहरहाल संदर्भ ज्ञान की गहराई में ले जाने के साथ-साथ उसकी व्यापकता में भी विश्वास करती है। साथ ही अंधविश्वासों और अपने स्वार्थों के लिए उन्हें इस्तेमाल करने वालों के विरुद्ध अपनी भूमिका का निर्वाह पूरी विनम्रता से करती है। इस अंक में जयंत नारलीकर का लेख 'इतिहासकारों के लिए चार सवाल' इस कथन का साक्षी है।

मनोहर बिल्लौरे
अधारताल, जबलपुर, म.प्र.

आपने सही लिखा है। पेज 72 पर दी गई पंक्ति में सुधार कर उसे इस तरह पढ़ा जाना चाहिए – '.... ओज़ोन, ऑक्सीजन का अपरूप यानी एलोट्रॉप (Allotrop) है।

संपादक मंडल

मैं संदर्भ का नियमित पाठक हूं। मुझे संदर्भ के 38वें अंक में 'खारे पानी में खेती' पढ़कर एक नई जानकारी मिली। आशा है आगे भी इस तरह की रोचक जानकारियां मिलती रहेंगी।

दिनेश कुमार बिनोले
ग्राम सतवास, देवास, म. प्र.

मैं वाणिज्य स्नातक हूं। जब से संदर्भ पत्रिका को पढ़ना शुरू किया तब से विज्ञान बहुत करीब लगने लगा है। पत्रिका में चयनित सामग्री बेहतर है, साथ ही सरल शब्दों में समझाने की कोशिश होती है। अब तो बच्चे को भी पत्रिका का इंतज़ार रहता है।

संतोष देव
कोलार रोड, भोपाल

वास्तव में यह पत्रिका जनमानस में वैज्ञानिक दृष्टिकोण विकसित करने का एक अच्छा माध्यम है। इस पत्रिका को और सार्थक बनाने के लिए इसमें कुछ नियमित स्तंभों का समावेश कीजिए जैसे वर्ग पहेली, विज्ञान समाचार,

स्वास्थ्य, पर्यावरण, कार्टून इत्यादि। दूसरा सुझाव है कि इस पत्रिका को मासिक कर देना और अच्छा रहेगा।

आलोक कुमार मिश्र
बेली कॉलोनी, इलाहाबाद, उ. प्र.

संदर्भ का 37वां अंक पढ़ा। इस अंक में एक वैज्ञानिक का सफर, अपने हाथ विज्ञान, देशांतर रेखा संबंधी लेख रोचक एवं उपयोगी लगे लेकिन 'गुरुत्व की बारीक बातें' बेहद जटिल हो गया है, मेरे तो सिर पर से ही गुज़र गया। अन्य लेख रोचक रहे।

अजित जैन जलज
ककरवाहा, टीकमगढ़, म. प्र.

पिछले कुछ समय से संदर्भ अनियमित रूप से मिल रही है लेकिन अब संदर्भ कोई अखबार तो है नहीं कि इसे उसी दिन प्राप्त कर पढ़ना ज़रूरी हो। अतः संदर्भ कुछ देर से मिलने के बावजूद भी मुझे कोई गम नहीं है। फिर भी मैं चाहूंगा कि संदर्भ की नियमितता को बरकरार रखा जाए क्योंकि समय पर इसके प्राप्त न होने से पाठकों को कई तरह की चिंताएं होती हैं।

अपनी विश्वविद्यालयीन परीक्षाओं के कारण मैं काफी समय से खत नहीं लिख पाया और अभी भी अंक 35 और 36 के कुछ लेखों को पूरी तरह नहीं पढ़ पाया हूं।

अंक 35 के बारे में मैं यह बताना चाहता हूं कि इसमें मुझे 'उबलते पानी के चश्मे' और 'तितलियों में रंग मज़ेदार' पसंद आए। वैसे यह बात तो मुझे पता थी कि कुछ घटनाओं में रंग व्यतिकरण व विवर्तन के कारण दिखते हैं, परन्तु इस प्रकार जीवित जीवों में रंग दिखने की बात काफी आश्चर्यचकित करने वाली है।

अंक 36 में चौरी-चौरा वाला लेख बहुत ज्ञानवर्धक रहा। इस लेख से यह निष्कर्ष साफतौर पर निकाला जा सकता है कि हमारे देश में अंधविश्वास की जड़ कितनी गहरी है। आज भी हमारे गांवों की स्थिति बहुत बदतर है और हमारी राजनैतिक पार्टियां लोगों को तरह-तरह के प्रलोभन दिखाकर अपना उल्लू सीधा करती रहती हैं।

अंक 37 के सारे लेख पढ़ लिए। इसके मुखपृष्ठ पर एक दुर्लभ कृति देखकर खुशी हुई। इसमें 'एक वैज्ञानिक का सफर' बहुत प्रेरणादाई रहा। विशेष रूप से लड़कियों के लिए, जिन्हें आगे बढ़ने में कई समस्याओं का सामना करना पड़ता है। जयंत नारलीकर के चारों सवाल यह सोचने को बाध्य करते हैं कि हमारे देश का पहले का वैज्ञानिक ज्ञान इतना विषम क्यों रहा? देशांतर रेखाओं वाले लेख में एच-4 मॉडल वाली घड़ी का चित्र देखकर तो मैं दंग रह गया। यकीन नहीं आ रहा था कि यह लगभग 250 साल पुरानी

है। यह तो आज की आधुनिक घड़ियों को मात देती प्रतीत हो रही है।

आसिफ अली खान
फतेहपुर, उ. प्र.

खारे पानी में खेती से विभिन्न पेड़-पौधों की जैविक क्रियाओं की जानकारी मिली। मेन्ग्रोव जैसे वृक्षों की जड़ों का वास्तविक उपयोग समझ में आया। 'हम हैं गाय की जात' लेख सटीक लगा। और 'गुरुत्व की बारीक बातें' से कई नए तथ्यों का खुलासा हुआ।

फिर भी एक बात खटकती है कि आप संदर्भ में किसी पत्रिका या पुस्तक के साभार अंश काफी ज़्यादा प्रकाशित करते हैं। विज्ञान में रुचि रखने वाले लेखकों के प्रोत्साहन हेतु आपको कोई कॉलम शुरू करना चाहिए।

चंपालाल कुशवाह
हिरणखेड़ा, होशंगाबाद, म. प्र.

अंक 37 एवं 38 मिला और मैंने दोनों अंकों को पढ़ा। 'एक वैज्ञानिक का सफर' लेख में कमला भागवत को जिन परिस्थितियों का सामना करना पड़ा उससे अहसास हुआ कि उस समय महिलाओं को वैज्ञानिक जैसे विशेषण के उपयुक्त भी नहीं समझा जाता था।

मैंने इससे पहले भी संदर्भ में सी. वी. रामन के बारे में पढ़ा था। लेकिन उनके जीवन के दूसरे पक्षों को जानकर यह लगने लगा कि रामन एक महान वैज्ञानिक तो थे लेकिन उनमें भी मानवीय कमज़ोरियां थीं, उनमें भी रुढ़ीवादी समाज की जड़ें गहराई तक बैठी हुई थीं।

अंक 37 में प्रकाश की गति को लेकर कुछ विरोधाभास दिखाई देता है। पेज 26 पर प्रकाश की गति 30 लाख मीटर/सेकेंड बताई है। पेज 32 पर 30 करोड़ मीटर/सेकेंड बताई है। इसी पेज पर 3 करोड़ मीटर/सेकेंड बताई गई है। कृपया इसे सही कीजिए और स्पष्टीकरण दीजिए।

'इतिहासकारों के लिए चार सवाल' लेख बहुत ही विचारपूर्ण एवं शोधपूर्ण था। भारतीय ज्ञान-विज्ञान का भंडार अथाह हो सकता है लेकिन यह जितना भी है आज भी व्यवस्थित और सह-संबद्धतापूर्ण नहीं है। इसलिए किसी भी विषय पर भारतीय दृष्टिकोण से कोई एक सिद्ध-पुस्तक नहीं लिखी जा सकती।

38 वें अंक में 'हम हैं गाय की जात' लेख बहुत ही विचारोत्तेजक लगा, साथ ही लेखिका की विचार विश्लेषण की क्षमता भी सराहनीय है। गाय एवं नारी के प्रति भारतीय समाज का दृष्टिकोण परम्परागत रूप से श्रद्धापूर्ण होते हुए भी 'बेचारगी' से युक्त है।

लेखिका ने एक जगह लिखा भी है कि यदि झगड़ालू महिला की किसी से तुलना करनी हो तो वो भैंस से की जाती है – झगड़ालू भैंस कहकर। वास्तव में यह भैंस के साथ अन्याय है। शायद लेखिका का उद्देश्य भी इसी अन्याय की ओर

संदर्भ के 38 वें अंक में विद्युत रासायनिक सेल वाला लेख पढ़कर मैंने भी कुछ नया करके देखने की कोशिश की। मैंने नीम की कुछ पत्तियों को पानी में उबाला और उबलते पानी में 5-6 चम्मच नमक भी डाल दिया। अब पानी को छानकर तीन-चार प्यालियों में भरा। इन प्यालियों में कार्बन और ज़िंक के इलेक्ट्रोड डालकर उन्हें सीरीज़ में जोड़ा। अब तार को इलेक्ट्रॉनिक घड़ी से जोड़ दिया। मेरी घड़ी चल पड़ी। और ऊंची आवाज़ में अलार्म भी बज रहा था। एक सप्ताह बाद अलार्म की आवाज़ मंद होने लगी तो मैंने हरेक प्याले में सल्फ्यूरिक एसिड की कुछ बूंदें टपकाई। एक बार फिर अलार्म की आवाज़ बढ़ गई। मैंने अनुमान लगाया कि एक बार फिर सेल में बिजली ज़्यादा मात्रा में बनने लगी होगी। इस तरह सल्फ्यूरिक एसिड डालकर मैंने घड़ी को एक महीने तक चलाया।

दीपक सोंधिया
पाली, ज़िला उमरिया, म. प्र.

हमारा दीपक से व अन्य पाठकों से अनुरोध है कि ऊपर बताए प्रयोग को पानी में बिना नमक डाले, सिर्फ नीम की पत्तियों के साथ ही करके देखें। फिर प्रयोग को आगे बढ़ाते हुए पानी में सिर्फ नमक डालिए, नीम की पत्तियां नहीं। देखिए क्या आपका सेल काम कर रहा है? और सोचिए इस सेल में नीम की पत्तियों की क्या भूमिका हो सकती है?

— सपादक मडल

इशारा करना हो।

इस लेख की एक और खास बात यह भी है कि लेखिका ने निबंध लेखन का जो तरीका अपनाया वह हमारे यहां के आज के निबंध लेखन के रटंत तरीके से न सिर्फ भिन्न है बल्कि श्रेष्ठतर भी है।

आज भी भारतीय स्कूलों में बच्चों को निबंध रटवाए जाते हैं, भले ही वे बच्चों के परिवेश से संबंधित हों। निबंध चाहे चाय बनाने के तरीके पर हो लेकिन निबंध तो रटवाया ही जाएगा।

रमेश जांगिड
भिरानी, हनुमानगढ़, राजस्थान

अंक 37 में भूलवश प्रकाश की गति संबंधी गलत आंकड़े छप गए हैं। कृपया पेज 26 और पेज 32 में जहां भी प्रकाश की गति मीटर में दी गई है उसे सुधार कर तीस करोड़ मीटर प्रति सेकेंड पढ़िए।

— सपादक मडल

समस्त संदर्भ सजिल्द उपलब्ध हैं

पिछले छः अंकों में प्रकाशित सामग्री एक साथ। साथ में एक विषयवार इंडेक्स जो किसी भी लेख को तुरन्त आपके सामने ले आए।

पिछले छः सालों में प्रकाशित सामग्री संदर्भ के छः सजिल्द में समेटी गई है।
संदर्भ अंक 1-6, 7-12, 13-18, 19-25, 26-30 और 31-36 के सजिल्द संस्करण उपलब्ध हैं।

प्रत्येक का डाक-खर्च सहित मूल्य 75 रु.।

राशि डिमांड ड्राफ्ट या मनीऑर्डर से भेजें।
ड्राफ्ट एकलव्य के नाम से बनवाएं।
अधिक जानकारी के लिए सम्पर्क करें।

एकलव्य
कोठी बाज़ार
होशंगाबाद, म. प्र. 461001
ई - मेल: eklavyah@yahoo.com

एकलव्य
ई-7/453 एच. आइ. जी., अरेरा कॉलोनी
भोपाल - 462016
ई - मेल: eklavyamp@vsnl.com

रंगरेज़ों से जुड़ा है लिटमस का इतिहास

सुशील जोशी

फूलों के रंग बहुत खूबसूरत होते हैं जैसे जासौन का सुर्ख लाल रंग। मगर क्या आपने कभी इसका रंग बदलकर देखने की कोशिश की है? काफी आसान है इसका रंग बदलना। वैसे हो सकता है आपने एक अन्य चीज़ का रंग बदलते देखा हो। हल्दी वैसे तो पीली होती है मगर ज़रा उसमें चूना लगाकर देखिए। है ना कमाल?

वनस्पतियों से प्राप्त रंगों का उपयोग अम्ल और क्षार के सूचकों के रूप में बखूबी किया जा सकता है। प्रयोगशाला में लिटमस का उपयोग तो हम करते ही हैं। लिटमस अम्ल और क्षार का एक अत्यंत सुविधाजनक सूचक है। लिटमस के रूप में आप इसे जेब में रखकर घूम सकते हैं। यह इतना प्रसिद्ध हुआ कि सच और झूठ के फैसले में 'दूध का दूध, पानी का पानी' की तरह 'लिटमस टेस्ट' मुहावरे का भी प्रयोग किया जाता है।

कई बार लोग पूछते हैं कि यह लिटमस चीज़ क्या होती है? यह मिलता कहां से है? इसकी रासायनिक संरचना क्या है? तो मैंने कुछ खोजबीन की और जो कुछ पता चला वह काफी दिलचस्प था।

हल्दी को रंग बदलते तो हम सबने देखा है, प्राचीन काल से लोग देखते आ रहे हैं। प्राचीन काल से लोग यह भी देखते आ रहे थे कि वनस्पतियों से प्राप्त रंगों को अलग-अलग रंगों में प्राप्त किया जा सकता है। काफी पुराने

ज़माने से रंगरेज़ लोग रंगाई के लिए वनस्पति से प्राप्त रंगों का उपयोग करते आए हैं।

मगर कहते हैं ना कि गालिब का है कुछ अन्दाज़े बयां और! रंगरेज़ों ने अपने अनुभव से देखा था कि वनस्पतियों से प्राप्त पदार्थों का रंग कई बातों पर निर्भर करता है। जैसे रंग पर इस बात का असर पड़ता है कि उसे वनस्पति से किस मौसम में इकट्ठा किया गया है। इसके अलावा रंग पर इस बात का भी असर पड़ता था कि उसे किस विधि से प्राप्त किया गया है।

मसलन आइरिस नामक पौधे के बैंगनी रस में यदि फिटकरी डाल दी जाए तो उसका रंग हरा हो जाता है। इसी प्रकार से एक लाइकेन रोसेला से बैंगनी रंग प्राप्त होता था। किन्तु यदि इसमें पेशाब मिलाकर इसे क्षारीय बना दिया जाता, तो रंग लाल हो जाता था। और यदि बैंगनी रस में तेज़ाब मिला दिया जाता तो उसका रंग नीला हो जाता था।

रंगरेज़ लोग इन तकनीकों का खूब उपयोग करते थे। मगर इसमें से एक वैज्ञानिक तथ्य खोज निकाला रॉबर्ट बॉयल ने। उन दिनों (1664 में) रॉबर्ट बॉयल अपनी पुस्तक 'एक्स्पेरिमेंटल हिस्ट्री ऑफ कलर्स' (रंगों का प्रायोगिक इतिहास) लिख रहे थे। उनका ध्यान रंगरेज़ों के इस करतब पर भी गया। मगर बॉयल मात्र इस करतब का ब्यौरा देकर रुके नहीं।

अम्ल या क्षार मिलाकर अलग-अलग रंग प्राप्त कर सकते हैं, तो हम इन रंगों का उपयोग अम्ल और क्षार की पहचान के लिए क्यों नहीं कर सकते? उस समय अम्ल और क्षार की पहचान के लिए कोई सूचक उपलब्ध न था। दूसरी बात यह थी कि खासतौर से खनिज अम्ल उस समय रासायनिक विश्लेषण में बहुत उपयोगी हो गए थे। अतः अम्लीय गुण और क्षारीय गुण की पहचान के लिए किसी आसान तरीके की दरकार थी। बॉयल के उक्त तर्क में से लिटमस का जन्म हुआ। यह रोसेला नामक लाइकेन के सत से प्राप्त एक रंजक था।

इसके बाद तो कई ऐसे सूचक खोजे गए। मगर लिटमस ही प्रथम अम्ल-क्षार सूचक था। उस समय इसका उत्पादन मात्र नीदरलैण्ड्स में होता था और इसे बनाने की विधि काफी गुप्त रखी जाती थी। नीदरलैण्डस में 16वीं सदी से ही इसका उत्पादन होता चला आ रहा था। यह एकाधिकार 1940 में कहीं जाकर समाप्त हुआ जब इंग्लैण्ड में जॉनसन्स ने इसका उत्पादन शुरू किया।

दरअसल लाइकेन से रंजकों का एक मिश्रण मिलता है। इस मिश्रण में

ऑर्चिल, ओर्सीन, लिटमस आदि रंजक होते हैं। अत: जो लिटमस हम इस्तेमाल करते हैं वह संभवत: एक मिश्रण ही है। शुरुआती दौर में इनके उत्पादन के लिए एकमात्र लाइकेन ओक्रोलेचिया टार्टेरिया का ही उपयोग होता था।

एक रोचक बात यह भी है कि सोलहवीं सदी से उपयोग किए जा रहे इन रंजकों की रासायनिक संरचना का पता काफी देर से चल पाया। इनके विश्लेषण में सबसे बड़ी बाधा तो शायद इन्हें शुद्ध रूप में प्राप्त करने की थी। इस दिशा में पहला कदम पियरे रॉबिकेट ने 1829 में उठाया जब उन्होंने मिश्रण में से ओर्सीन नामक रसायन अलग किया। इसके बाद 1840 में इस लाइकेन से चार अलग-अलग रंगीन पदार्थ प्राप्त किए गए – एज़्रोलिटमिन, स्पेनियोलिटमिन, इरिथ्रोलिन और इरिथ्रोलिटमिन। इरिथ्रोलिटमिन ही लिटमस है। यह एक बहुलक होता है।

इन यौगिकों की रचना ज्ञात करने का श्रेय हैन्स मुसो को जाता है। उन्होंने 1956 से 1965 के बीच इनका अध्ययन करके कम से कम 25 शोध पत्र प्रकाशित किए।

वैसे रंगरेज़ों और लिटमस के संबंधों

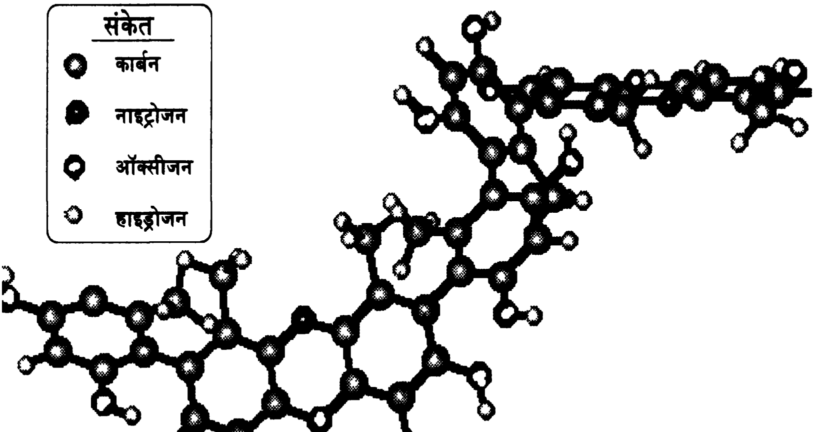

यूं तो लाइकेन से मिलने वाले रंजकों के बारे में काफी पहले से जानकारी थी लेकिन रंजकों की रासायनिक संरचना के बारे में कोई खास मालूमात न थे। सन् 1840 के आसपास लाइकेन से चार अलग-अलग रंगीन पदार्थ प्राप्त किए गए इन चार पदार्थों में एक था – इरिथ्रोलिटमिन। इरिथ्रोलिटमिन ही लिटमस है जो एक बहुलक है। यहां दी गई रासायनिक संरचना लिटमस की त्रिआयामी बनावट को दर्शा रही है।

शोखियों में घोला जाए फूलों का शबाब
लिटमस का उत्पादन

मध्य युग में लिटमस प्राप्त करने के लिए पहले रोसेला लाइकेन में से ऑर्चिल प्राप्त किया जाता था। ऑर्चिल प्राप्त करने की विधि पढ़कर मुझे तो बस उस गाने की याद आई 'शोखियों में घोला जाए फूलों का शबाब'। आप स्वयं इस विधि का लुत्फ उठाइए।

ऑर्चिल बनाने की विधिः

एक पाउण्ड लेवॉ की ओर्सेल लो, एकदम स्वच्छ; इसे पेशाब से भिगाओ, इसमें साल अमोनिएक, साल गेमे और साल्ट पीटर प्रत्येक दो–दो आउन्स मिलाओ, इन्हें अच्छी तरह कूटकर मिलाओ और फिर 12 दिन के लिए छोड़ दो। दिन में दो बार मिश्रण को हिलाओ, और फिर इसे लगातार गीला रखो, थोड़ी–थोड़ी पेशाब मिलाते रहो, इस स्थिति में इसे आठ दिन रहने दो, लगातार हिलाते रहो, इसके बाद इसमें डेढ़ पाउण्ड पोटाश डालो और अच्छी तरह कूटो और फिर डेढ़ पाइंट बासी पेशाब डालो। फिर से आठ दिन और पड़ा रहने दो, समय–समय पर हिलाते रहो और उतनी ही मात्रा में पेशाब डालो। पांच–छः दिन बाद दो ड्रेचम आर्सेनिक डालो, तब यह उपयोग के लिए तैयार है।

लिटमस उत्पादन के लिए अन्तर केवल इतना होता है कि पूरे मिश्रण में पोटाश, चूना और जिप्सम भी मिलाए जाते हैं।

आजकल लिटमस का उत्पादन ज्यादा सरल विधि से किया जाता है।

लाइकेन को सोडियम कार्बोनेट व अमोनिया के घोल में पीसा जाता है। कई सप्ताह तक बीच-बीच में हिलाते हुए इसे पड़ा रहने देते हैं। धीरे-धीरे इसका रंग बैंगनी और फिर नीला हो जाता है। अब लाइकेन को सुखाकर पाउडर बना लेते हैं। इस अवस्था में लाइकेन में कुछ मात्रा में लिटमस और कुछ मात्रा में रंजक होते हैं। आल्कोहल के साथ घोलकर ओर्सीन को अलग कर लिया जाता है। इस प्रकार से शुद्ध लिटमस प्राप्त हो जाता है। ज़ाहिर है इस पूरी प्रक्रिया में बीच में तमाम पदार्थ बनते-बिगड़ते होंगे।

का एक पन्ना अभी और है। उसका संबंध लिटमस कागज़ से है। आपने ध्यान दिया होगा कि युनिवर्सल सूचक के अलावा लिटमस ही एक मात्र ऐसा सूचक है जिसका उपयोग लिटमस कागज़ के रूप में किया जाता है। आखिर लिटमस कागज़ बनाने का आइडिया कहां से आया? एक बार फिर हमें रंगरेज़ों की याद आती है।

रंगरेज़ लोग एक अन्य पौधे टर्नसोल (क्रोज़ोफेरा टिंक्टोरिया) से बैंगनी रंग प्राप्त किया करते थे। इस रंग को वे घोल के रूप में नहीं रखते थे। पौधे से इस रंग का घोल प्राप्त हो जाने पर वे कपड़े के टुकड़ों को इसमें भिगोकर, सुखाकर रख लिया करते थे। जब फिर से रंग प्राप्त करना होता था, तो इन कपड़ों को पानी में भिगोया जाता था। मज़ेदार बात यह थी कि ऐसा करने पर बैंगनी नहीं बल्कि सुर्ख लाल रंग प्राप्त होता था। दूसरी ओर यदि कपड़ों को भिगोने से पहले चूने के पानी में से निकाल लिया जाता तो बाद में बैंगनी रंग प्राप्त होता था।

कहते हैं कि कागज़ की पट्टियों को रोसेला के सत में भिगोकर लिटमस कागज़ बनाने का विचार बॉयल को यहीं से सूझा था।

सुशील जोशी: एकलव्य के होशंगाबाद विज्ञान शिक्षण कार्यक्रम और स्रोत फीचर सेवा से जुड़े हैं। विज्ञान लेखन भी करते हैं।

अच्छे सवाल कैसे पूछें

कैरन हैडॉक

अक्सर एक विद्यार्थी के सवाल का सबसे अच्छा जवाब एक ऐसा प्रति-प्रश्न होता है जो विद्यार्थी को खुद जवाब ढूंढने या सोचने को प्रेरित करे। तरह-तरह के सवालों के उदाहरण देता हुआ एक लेख।

सवाल पूछना पढ़ाने के लिए एक मूलभूत ज़रूरत है। जवाब देने से कहीं ज़्यादा ज़रूरी है कि हम सवाल पूछें और अपने विद्यार्थियों को भी सवाल पूछने के लिए प्रोत्साहित करें। आमतौर पर विद्यार्थी थोड़ा गहराई से सोचकर, तार्किक तरीके से कारण ढूंढकर, किताबें पढ़कर, एक-दूसरे से पूछकर अपने जवाब खुद ही ढूंढ सकते हैं।

कक्षा को कोई बात बताने से पहले आप अपने से पूछिए कि क्या इसके बदले आप कोई ऐसा सवाल पूछ सकते हैं जिससे कोई विद्यार्थी वह (या वैसी ही) बात बता दे। ज़रा परखिए तो सही कि जो बात आप बताने जा रहे हैं, हो सकता है वह किसी विद्यार्थी को पहले से ही पता हो। अक्सर एक विद्यार्थी के सवाल का सबसे अच्छा जवाब एक ऐसा प्रति-प्रश्न होता है जो विद्यार्थी को खुद जवाब ढूंढने या सोचने को प्रेरित करे।

आकलन या मूल्यांकन के लिए भी यह ज़रूरी होता है कि हम अच्छे प्रश्न पूछना जानें। विद्यार्थियों का

आकलन करके यह पता लगाया जा सकता है कि बच्चों ने कितना सीखा है, उन्हें किन क्षेत्रों में ज़्यादा ध्यान देने की ज़रूरत है, किन कौशलों में सुधार की ज़रूरत है, उनमें क्या गलत-फहमियां हैं, किन कौशलों व क्षेत्रों में वे अच्छे हैं, आदि, आदि। आकलन की मदद से शिक्षक व पालक यह भी जान सकते हैं कि उनका पढ़ाना कितना कारगर है – आकलन उन्हें नए तरीके सुझा सकता है और यह बता सकता है कि किस सामग्री पर ज़्यादा ध्यान देने की ज़रूरत है। आकलन प्रोत्साहन देने वाला होना चाहिए, हतोत्साहित करने वाला नहीं। शिक्षण और आकलन साथ-साथ चलना चाहिए। ये दोनों लगातार चलने वाली प्रक्रियाएं हैं।

ऐसे प्रश्न सोचने की कोशिश करें जो विद्यार्थियों को एक सामान्य से ऊंचे स्तर पर सोचने को बाध्य करें। जो समझने, समझी हुई बात को लागू करने, तुलना करने, वर्गीकरण करने, विश्लेषण करने, जोड़कर देखने, परखने, अनुमान लगाने, निर्णय करने, कुल मिलाकर सृजनात्मक होने को बाध्य करें; जिससे उन्हें आनन्द मिले और वे विषय के प्रति ज़्यादा रुचि लें। आपके द्वारा पूछे गए सवाल विद्यार्थियों के पूर्व ज्ञान और अनुभव पर निर्भर करेंगे, और कक्षा में आप के द्वारा अपनाए गए तौर-तरीकों पर भी।

याददाश्त से परे सवाल क्यों ?

उदाहरण के लिए इस सवाल पर गौर करें:

> *गंगा इलाहाबाद से पटना की ओर बहती है या पटना से इलाहाबाद की ओर?*

आप विद्यार्थियों को इस सवाल का जवाब बता सकते हैं और उन्हें कह सकते हैं कि वे उसे याद रखें। या फिर आप उन्हें पहाड़, नदी, समुन्दर, पानी, रेत का अभिनय करवा सकते हैं ताकि वे यह सीख सकें कि कैसे पानी पहाड़ों से समुन्दर की ओर बहता है। फिर आप उन्हें नक्शे में उन पहाड़ों को ढूंढने को कह सकते हैं जहां से गंगा बहती है और उस समुद्र को भी जहां तक वह जाती है। गंगा के बहाव के रास्ते में वे इलाहाबाद और पटना भी ढूंढ सकते हैं और इस सवाल का जवाब खुद ही पता कर सकते हैं। दूसरे तरीके में कहीं ज़्यादा समय और ऊर्जा की ज़रूरत होगी पर इससे

1. विद्यार्थियों को भूगोल में मज़ा आने लगेगा।
2. एक ऐसे महत्वपूर्ण सिद्धांत की समझ विकसित होगी जो उन्हें कई सवालों के हल खोजने में मदद करेगा (कि नदियां ऊंचे पहाड़ों से नीचे के समुन्दरों की ओर बहती हैं)।
3. वे और सवाल पूछने और उनके जवाब खुद ढूंढने को प्रेरित होंगे।

4. वे गहराई से सोचने को बाध्य होंगे।
5. उन्हें जवाब याद रहेगा।

सिर्फ याद रखने के बजाय समझें

अगर आप एक ऐसा सवाल पूछते हैं जिसका उत्तर विद्यार्थी पहले भी दे चुके हैं या जो उन्हें बताया जा चुका है, तो आप उनसे सिर्फ कुछ याद रखने की अपेक्षा करते हैं। इसके बजाय उनसे बिल्कुल नए प्रश्न पूछने की कोशिश कीजिए, ऐसे प्रश्न जिनके बारे में विद्यार्थियों ने कभी सोचा ही न हो।

एक ही सवाल सिर्फ याद्दाश्त की जांच करने वाला सवाल भी हो सकता है और जटिल स्तर पर सोचने की मांग भी कर सकता है। सवाल किस कौशल को बढ़ावा देगा यह इस बात पर निर्भर करता है कि विद्यार्थियों को पहले से क्या बताया गया है। उदाहरण के लिए मान लीजिए आपने यह सवाल पूछा, "कुछ लोग, आज भी खेती नहीं करते हैं और अपना सारा भोजन शिकार करके या बीनकर इकट्ठा कर लेते हैं। तुम्हें क्या लगता है कि वे ऐसा क्यों करते हैं?" अगर आपने कक्षा को पहले से यह बता दिया हो कि कुछ लोगों को खेती नहीं करनी पड़ती क्योंकि जिन जंगलों में वे रहते हैं वहां ढेर सारा भोजन उपलब्ध रहता है, तो उन्हें सिर्फ अपनी याद्दाश्त की ज़रूरत पड़ेगी। लेकिन अगर कक्षा ने पहले सिर्फ यह चर्चा की हो कि शिकारी मानव कैसे रहते हैं और खेतीहर किसान कैसे रहते हैं, बिना यह चर्चा किए कि वे ऐसे क्यों रहते हैं, तो फिर विद्यार्थियों को ये चर्चाएं याद करनी होंगी और कारण ढूंढने के लिए याद में बसी बातों का विश्लेषण भी करना होगा।

तुलना करें

- दुनिया के विभिन्न भागों के भौगोलिक और राजनैतिक पहलुओं की तुलना करें।
- इतिहास में अलग-अलग कालखंड और जगहों की तुलना करें।
- अलग-अलग राजनैतिक व्यवस्थाओं की तुलना करें।
- विभिन्न लोगों के फर्क दृष्टिकोणों की तुलना करें।

वर्गीकरण करें

- अपने एटलस के नक्शों की मदद से पता लगाएं कि कौन-से देश प्रमुख रूप से रेगिस्तानी हैं (या पहाड़ों से भरे हैं या कृषि प्रधान हैं आदि)।
- नक्शों को देखकर पता लगाएं कि किन राज्यों में कपास या सोयाबीन उगाया जाता है।
- अपनी किताब के नक्शों को देखकर वे राज्य ढूंढिए जो कभी गुप्त साम्राज्य का हिस्सा थे।

विश्लेषण करें

एक नए सवाल को हल करने के लिए कुछ खास कौशलों का उपयोग करें। उदाहरण के लिए :

1. दो बड़ी संख्याओं का गुणनफल निकालने के लिए गणित के पहाड़ों के ज्ञान का उपयोग करें।
2. दी गई चीज़ों को नापें।
3. इस नक्शे की मदद से फलाने शहर का अक्षांश -देशांश पता लगाएं।
4. ग्राफ कागज़ की मदद से एक राज्य का क्षेत्रफल निकालें।
5. आपको क्या लगता है कि भारत में इतनी सारी भाषाएं क्यों बोली जाती हैं?

'क्यों' वाले सवाल

यह पूछें कि कोई जवाब सही क्यों है? या कोई घटना क्यों होती है या हुई? जैसे:

- बताओ (7×6) +3 का योग 7 × (6+3) से कम क्यों है?
- सम्राट अशोक ने युद्ध लड़ना बंद करने का फैसला क्यों किया?
- कछुए घोंघों से तेज़ क्यों दौड़ते हैं?
- पहाड़ों पर ऊंचाई में लगे पेड़ों की ऊंचाई कम क्यों होती है? और पहाड़ों पर जैसे-जैसे ऊपर चढ़ें, पेड़ों की ऊंचाई कम क्यों होती जाती है?
- .5 और .50 समान क्यों हैं?

सीखने का फायदा क्या है?

1. आपको यह क्यों सीखना चाहिए कि 'गैस' क्या होती है?
2. गणित के पहाड़े क्यों मालूम होना चाहिए?
3. सिन्धु घाटी के बारे में पढ़ने का क्या उपयोग है?

इस तरह के सवाल पूछना सिर्फ इसलिए ज़रूरी नहीं कि विद्यार्थी इन चीज़ों को सीखने का महत्व या उपयोग समझ पाएं; बल्कि इसलिए भी ताकि आपको यह पता चले कि वे इन बातों को इतनी अच्छी तरह समझ पाए हैं कि उनकी उपयोगिता का विश्लेषण कर सकें।

क्या आप साबित कर सकते हैं?

सिर्फ अन्तर याद रखना ही काफी नहीं है – विद्यार्थियों को यह भी समझ में आना चाहिए कि कोई जवाब सही या गलत क्यों है। उन्हें अपनी बात को तर्क के सहारे, उदाहरणों की मदद से समझाने और अपने मतों को सही साबित करने का भी अभ्यास मिलना चाहिए।

चित्र या रेखाचित्र से समझाएं

आज के चंडीगढ़ (या आगरा या भोपाल) या 20 साल पहले के होशंगाबाद के जीवन के सामाजिक,

आर्थिक, राजनैतिक, धार्मिक और सांस्कृतिक पहलुओं के उदाहरण दिखाता हुआ एक चित्र बनाइए।

ग्राफ बनाए, उसका इस्तमाल करें

– इस ग्राफ को देखकर बताएं कि वेनेज़ुएला से निर्यात होने वाली प्रमुख वस्तुएं कौन-सी हैं?
– एक ग्राफ बनाकर बताएं कि पिछले 80 सालों में जनसंख्या में स्त्री-पुरुष अनुपात में क्या बदलाव आए हैं?
– क्या इस ग्राफ से आप यह पता लगा सकते हैं कि भारत में मुसलमान लोगों की संख्या अधिक है या पाकिस्तान में?

रूपरेखा बनाएं

– इस पाठ की रूपरेखा (सार) बनाएं। कोशिश करें कि संपूर्ण वाक्यों का उपयोग न हो।
– निम्न सवाल के जवाब में एक पेज लिखने से पहले, उन बिन्दुओं को जोड़कर जवाब की एक रूपरेखा लिखिए जिन पर आपका जवाब आधारित होगा।

सार लिखना

इस पाठ के तीसरे पैरा में कही गई सबसे महत्वपूर्ण बात का सार एक वाक्य में लिखिए।

एक अलग नज़रिए से देखें

– अगर आप एक सम्राट होते, तो आप क्या सोचते?
– मान लीजिए कि आप एक किसान हैं, तब आप क्या सोचते?

क्या होगा अगर...?

– अगर मनुष्य के शरीर पर भी बाल या ऊन होता जैसे कई जानवरों पर होता है? तो इतिहास का विकास कैसे बदल जाता?
– अगर भारत को अब तक ब्रिटेन से स्वाधीनता न मिली होती, तो आपका जीवन किस तरह से अलग होता?

कैरन हैडॉक: स्वतंत्र चित्रकार। चंड़ीगढ़ की एक स्कूल में अध्यापन कार्य कर रही हैं। बायोफिजिक्स में शोधकार्य।

अनुवाद: टुलटुल बिस्वास। एकलव्य द्वारा प्रकाशित होने वाली बाल विज्ञान पत्रिका 'चकमक' से जुड़ी हैं।

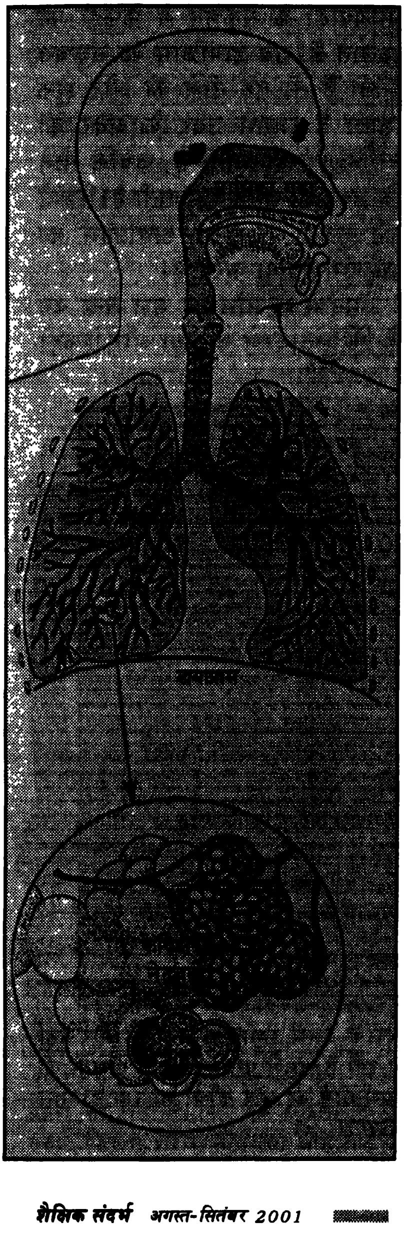

हम सांस कैसे लेते हैं?

जे. बी. एस. हाल्डेन

इस बार – उस सांस के बारे में जिस पर काफी हद तक ज़िंदगी का दारोमदार टिका हुआ है।

आदिम य सोचते थे कि जीना और सांस लेना एक ही बात है। इस विचार ने हमारी भाषा को प्रभावित किया है। उदाहरण के लिए लैटिन भाषा में सांस के लिए दो शब्द हैं – एनिमा और स्पिरिट्स। इनसे बने अंग्रेज़ी शब्द एनिमल और स्पिरिट के अर्थ अलग-अलग हैं किन्तु मूलतः इन दोनों का अर्थ था, सांस लेने वाला।

कुछ सरल जीव तो बगैर सांस के भी जी सकते हैं। अधिकांश जीव ऑक्सीजन का उपयोग करते हैं और कार्बन डाई ऑक्साइड से निजात पा लेते हैं। ज़मीन पर रहने वाले बड़े जंतु इस काम के लिए कुछ विशेष अंगों यानी फेफड़ों का उपयोग करते हैं। हम अपनी पसलियों की गति से और सीने व उदर के बीच स्थित एक गुम्बदनुमा मांसपेशी (डायाफ्राम, मध्यपाट) के संकुचन से फेफड़ों को फुलाते हैं। जब डायाफ्राम का संकुचन होता है तो वह नीचे की ओर झुक जाता है जिससे उदर के अंदर की जगह कम हो जाती है, जबकि सीने के अंदर की जगह बढ़ जाती है। स्त्रियों की तुलना में पुरुष डायाफ्राम का उपयोग ज़्यादा करते हैं।

मनुष्य में सांस का मूल तत्व यह है कि वातावरण की हवा और फेफड़ों

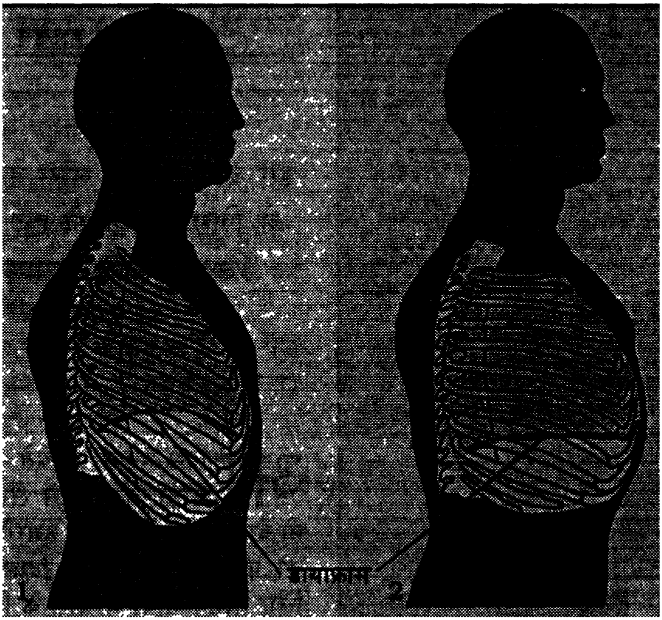

सांस लेना और छोड़ना: स्थिति-1 आराम की मुद्रा है; इसमें डायाफ्राम ऊपर की ओर उठा हुआ दिख रहा है। स्थिति-2 में सांस खींची जा रही है; इसमें पसलियां मांस पेशियों की मदद से ऊपर की ओर उठ रही हैं और डायाफ्राम नीचे की ओर खींचा जा रहा है। सांस छोड़ते समय फिर से स्थिति-1 को दोहराया जाएगा।

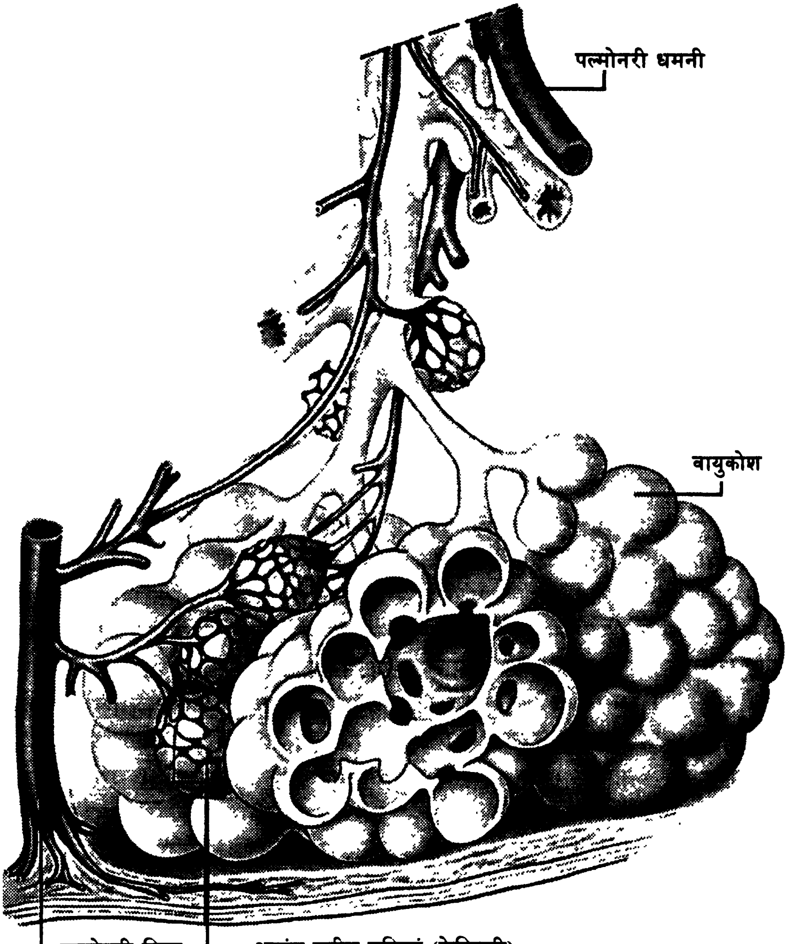

गैसों का आदान-प्रदान: नाक या मुंह से प्रवेश करके श्वास नली से होती हुई वातावरण की हवा छोटी नलियों, और छोटी नलियों, अत्यन्त महीन नलियों से होती हुई अंततः हवा से भरे इन बुलबुलों तक पहुंच जाती है। इसी तरह शरीर में घूम चुका खून भी बारीक होती जाती शिराओं में से होता हुआ इन हवा के बुलबलों के इर्दगिर्द बिछे रक्तनलियों के जाल तक पहुंच जाता है। यहां पहुंचकर खून कार्बन डाई ऑक्साइड छोड़ देता है और ऑक्सीजन ग्रहण कर लेता है। फिर यह ऑक्सीजन-युक्त खून हृदय में से होता हुआ धमनियों के सहारे फिर से शरीर के समस्त अंगों तक पहुंच जाता है।

के बीच गैसों का आदान-प्रदान हो। यदि सांस लेने से संबंधित मांसपेशियां लकवा ग्रस्त हो जाएं तो भी सांस लेने का कार्य कृत्रिम फेफड़ों की मदद से चल सकता है। यह भी कतई ज़रूरी नहीं है कि सांस लेने व छोड़ने के लिए व्यक्ति अपने सीने की धोंकनी को फुलाता-पिचकाता रहे। सांस लेने-छोड़ने का काम तो सीने को हिलाए डुलाए बगैर भी हो सकता है। इसके लिए व्यक्ति को एक स्टील के बर्तन में रख देना होगा जिसके अंदर हवा का दबाव क्रमशः कम-ज़्यादा किया जाएगा। एक मिनट में लगभग 15 बार हवा के दबाव में 360 ग्राम/वर्ग सेंटीमीटर का उतार-चढ़ाव पर्याप्त होगा। व्यक्ति को जब ऐसे प्रकोष्ठ में रखा जाता है तो जल्दी ही वह सामान्य अर्थों में सांस लेना बंद कर देता है। उसके फेफड़ों में हवा का फैलना-दबना ही गैसों के आदान-प्रदान के लिए पर्याप्त होता है।

कितनी हवा चाहिए फेफड़ों को

फेफड़ों की बनावट खूब स्पंजी होती है और इनकी सतह का क्षेत्रफल 100 वर्ग मीटर के लगभग होता है। हवा व खून को अलग-अलग रखने वाली झिल्ली अत्यंत महीन होती है। यह हमारे शरीर का सबसे दुर्बल हिस्सा है। सात में से तकरीबन एक व्यक्ति फेफड़े के रोग से मरता है। ये रोग किसी संक्रमण, धूल अथवा दोनों के मिले-जुले प्रभाव से हो सकते हैं। वैसे फेफड़ों के पास अतिरिक्त गुंजाइश काफी होती है। कोई व्यक्ति एक ही फेफड़े के सहारे भली प्रकार जी सकता है। फेफड़ों की अपेक्षा हृदय रोगों से ज़्यादा लोग मरते हैं। किन्तु इसका कारण यह है कि हृदय का कोई हिस्सा ऐसा नहीं है जिसके बगैर भी काम चल सके। यदि हृदय आधा हो, तो शायद आप पांच मिनट भी नहीं जी पाएंगे।

विश्राम करता कोई व्यक्ति प्रति घण्टे लगभग एक घन फुट ऑक्सीजन का उपयोग करता है। कड़ी मेहनत के दौरान यह खपत दस गुना तक बढ़ सकती है। मनुष्य जितनी ऑक्सीजन की खपत करता है उससे थोड़ी कम कार्बन डाईऑक्साइड (आयतन में कम) उत्पन्न करता है। जब सांस में ली जाने वाली हवा में कार्बन डाई-ऑक्साइड की मात्रा 3 प्रतिशत से अधिक हो जाए तो हम गहरी सांस लेने लगते हैं। जब यह 6 प्रतिशत से अधिक हो जाए तो हम बुरी तरह हांफने लगते हैं। इसका एक उदाहरण देखिए। यदि किसी पनडुब्बी में प्रति व्यक्ति 200 घन फुट हवा हो, और सामान्य कामकाज करते समय व्यक्ति 1 घन फुट कार्बन डाईऑक्साइड प्रति घंटा उत्पन्न करे और यदि इस कार्बन डाईऑक्साइड को वहां से कृत्रिम ढंग से न हटाया जाए, तो 24 घंटे के

अंदर उस पनडुब्बी के सारे लोग बुरी तरह हांफने लगेंगे।

CO_2 की भूमिका

हमारे खून में अधिकांश ऑक्सीजन और कार्बन डाईऑक्साइड रासायनिक रूप से संयोजित स्वरूप में रहती है। यदि आप 100 इकाई आयतन खून में पंप द्वारा ऑक्सीजन व कार्बन डाईऑक्साइड निकालें तो लगभग 18-20 इकाई आयतन ऑक्सीजन तथा 50-60 इकाई आयतन कार्बन डाईऑक्साइड निकलेगी। इसका अर्थ है कि एक इकाई आयतन खून में लगभग उतनी ऑक्सीजन होती है जितनी हवा के एक इकाई आयतन में। खून में ऑक्सीजन हिमोग्लोबीन नामक लाल रंजक से जुड़ जाती है। आप चाहे कितनी गहरी सांस लें या चाहे शुद्ध ऑक्सीजन लें, यह रंजक तो उतनी ही ऑक्सीजन जोड़ेगा। दूसरी ओर यदि हवा में ऑक्सीजन की मात्रा थोड़ी कम हो जाए, तो भी ऐसा नहीं होता कि यह रंजक कम ऑक्सीजन ले ले।

कार्बन डाईऑक्साइड खून में मूलतः सोडियम बाई कार्बोनेट के रूप में पाई जाती है। चूंकि विभिन्न दुर्बल अम्ल सोडियम के लिए प्रतिस्पर्धा करते हैं, इसलिए होता यह है कि यदि आप ज़रूरत से ज़्यादा सांस लें तो आपके खून में से काफी सारी कार्बन डाईऑक्साइड निकल भागती है। दूसरी ओर यदि आप ऐसी हवा में सांस लें जिसमें 7 प्रतिशत से ज़्यादा कार्बन डाईऑक्साइड है तो आपका खून बहुत ज़्यादा कार्बन डाईऑक्साइड सोख लेता है। दोनों ही स्थितियों में आपको अजीब लगेगा। यदि आप एक कुर्सी पर बैठकर गहरी-गहरी सांसें जल्दी-जल्दी लेने लगें तो संभव है कि एक मिनट में आपकी उंगलियों में झुनझुनाहट होने लगे। यदि आप इसके बाद भी जारी रखेंगे तो शायद आपके हाथ-पैरों में ऐंठन (Cramps) होने लगेगी। कुछ लोगों को इससे ऐच्छिक पेशियों में ऐंठन (Convulsions) होने लगते हैं और यदि इस लेख का प्रत्येक पाठक यह कोशिश करे तो एक-दो की मृत्यु निश्चित है।

आपके शरीर के सामान्य कामकाज के लिए ज़रूरी है कि आपके खून व विभिन्न अंगों में सही मात्रा में कार्बन डाईऑक्साइड मौजूद रहे। इसे हम यों भी कह सकते हैं कि कार्बन डाईऑक्साइड ज़हर भी है और जीवन की अनिवार्यता भी है। सांस लेने-छोड़ने का नियमन प्रायः इस तरह किया जाता है कि खून में कार्बन डाईऑक्साइड का एक निश्चित स्तर बना रहे। जब व्यायाम के कारण खून में कार्बन डाईऑक्साइड की मात्रा बढ़ती है तो आप हांफने लगते हैं। यदि इसकी मात्रा कम हो जाए तो आप धीमी गति से सांस लेने लगते हैं, और यह तभी

सामान्य गति पर पहुंचती है जब कार्बन डाईऑक्साइड सामान्य स्तर पर पहुंच जाए। सांस की गति का नियमन करने वाला एक कारक और भी है जो गति को तेज़ कर देता है। यह कारक है खून में ऑक्सीजन की मात्रा; जैसे ही यह मात्रा एक मानक स्तर से नीचे हो जाती है, सांस की गति तेज़ हो जाती है। किन्तु नियमन का यह तरीका तभी क्रियाशील होता है जब आप अत्यंत कठोर परिश्रम करें।

मस्तिष्क में पहुंचने वाले खून की लगातार जांच की जाती है। जांच का यह काम कुछ हद तक तो मस्तिष्क की कोशिकाएं स्वयं ही करती हैं, जबकि इसके लिए कुछ विशेष अंग भी होते हैं। ये अंग कैरोटिड धमनी में उपस्थित दाबमापियों के पास स्थित होते हैं। दरअसल सांस लेना व छोड़ना एक ऐसी क्रिया है जो खून के संघटन पर निर्भर है।

वास्तव में सांस लेना व छोड़ना शरीर की उन कई सारी गतिविधियों में से एक है जो हमारी कोशिकाओं का अंदरुनी पर्यावरण एक-सा बनाए रखने का काम करती हैं। चूंकि सांस की क्रिया का अध्ययन सबसे आसान है, इसलिए इसका अध्ययन हुआ तथा इसने अन्य ऐसे क्रिया-कलापों को समझने में मदद दी। रोचक बात यह है कि उपरोक्त नियमन तब भी चलता रहता है जब हम अपने फेफड़ों का इस्तेमाल किसी और काम (जैसे बोलने या गाने) के लिए कर रहे होते हैं। आमतौर पर नियमन अचेतन स्तर पर चलता रहता है। किन्तु यदि इसमें खलल पड़े, मसलन हम सांस रोक लें या 7 प्रतिशत कार्बन डाईऑक्साइड युक्त हवा में सांस लें तो हमें हवा की भूख लगती है। यह एक ऐसी अनुभूति है जो शरीर सबसे प्राथमिक मानता है। यह हमारे शरीर की आम कार्य प्रणाली है – जब तक हमारा शरीर ठीक-ठाक काम़ करता रहे, हमारा दिमाग उस पर अधिक ध्यान नहीं देता। किन्तु कुछ गड़बड़ होते ही उस ओर प्राथमिकता से ध्यान दिया जाता है। कुछ ज़रूरतें ऐसी हैं जिन्हें हमारी चेतना भली प्रकार पहचानती है। हम जानते हैं कि कब हमें हवा, पानी या भोजन की कमी हो रही है। बदकिस्मती से, हमें इस बात का भान नहीं हो पाता कि हमें भोजन के किसी खास घटक का अभाव हो रहा है। जैसे ट्रिप्टोफेन या विटामिन-ए। और इसी के साथ हम आ जाते हैं भोजन और पाचन के विषय पर।

जे. बी. एस. हाल्डेन: (1892-1964) प्रसिद्ध अनुवांशिकी विज्ञानी। विकास (Evolution) के सिद्धांत को स्थापित करने में महत्वपूर्ण योगदान। विख्यात विज्ञान लेखक। प्रस्तुत निबंध 'वॉट इज़ लाइफ' नाम के संकलन से लिया गया है।

अनुवाद: सुशील जोशी: एकलव्य के होशंगाबाद विज्ञान शिक्षण कार्यक्रम और स्रोत फीचर सेवा से जुड़े हैं। विज्ञान लेखन एवं अनुवाद भी करते हैं।

सांस लेना सांस छोड़ना

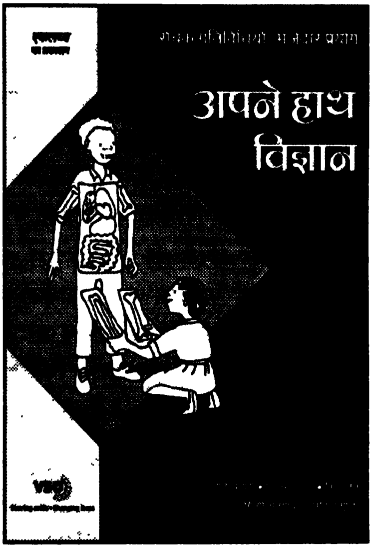

कक्षा में विज्ञान पढ़ाना एक चुनौती भरा काम होता है। प्रयोग और गतिविधियों की मदद से विज्ञान पढ़ाया जा सकता है लेकिन इस विधि में बहुत सारी समस्याएं आ खड़ी होती हैं। ऐसी सब परेशानियों को ध्यान में रखते हुए इस पुस्तक को तैयार किया गया है।

इस पुस्तक में संकलित प्रयोग तमाम व्यावहारिक संभावनाएं दिखाते हैं। वे शिक्षकों को एक नई शुरुआत करने के लिए प्रेरित करते हैं। परन्तु साथ ही उनसे यह अपेक्षा भी है कि प्रयोगों में इस्तेमाल होने वाले उपकरणों को स्थानीय उपलब्धता और उपयुक्तता के अनुसार बदलना होगा। और उससे भी आगे बढ़कर, जैसे-जैसे शिक्षक इस विधि से आगे बढ़ेंगे, बहुत से विचार व गतिविधियां अपने आप ही जुड़ते जाएंगे।

पिछले अंक में हमने परासरण के प्रयोग देखे थे। इस बार श्वसन की प्रक्रिया को समझने के लिए कुछ गतिविधियां दी जा रही हैं।

सांस लेना

* श्वसन की प्रक्रिया में हवा फेफड़ों में जाकर बाहर आती है।
* जैसे ही सीने और पेट को अलग करने वाली झिल्ली (डायाफ्राम) की मांसपेशियां सिकुड़ती हैं, वैसे ही सीने के अंदर का स्थान फैल जाता है। इस तरह आयतन के बढ़ने के कारण फेफड़ों के अंदर का दबाव घटता है और हवा फेफड़ों के अंदर आती है।
* सांस द्वारा अंदर ली गई हवा में, बाहर फेंकी हवा के मुकाबले, ऑक्सीजन अधिक और कार्बन डाईऑक्साइड कम होती है। ऑक्सीजन फेफड़ों के ज़रिए ही रक्त में आती है और रक्त के माध्यम से ही कार्बन डाईऑक्साइड फेफड़ों में जाती है।
* गैसों का आदान-प्रदान फेफड़ों की झिल्ली के माध्यम से होता है। यह झिल्ली करोड़ों थैलीनुमा कोशिकाओं (एल्वियोली) की बनी होती है।
* श्वसन एक ऐसी ही चयापचयी प्रक्रिया है जिसमें ऑक्सीजन, भोजन की ऊर्जा को मुक्त करती है और साथ में कार्बन डाईऑक्साइड भी पैदा होती है।

फेफड़ों की क्षमता

आवश्यक सामान

– बड़ी प्लास्टिक की थैली
– बाल्टी
– एक बड़ा तसला या परात

बाल्टी को एकदम ऊपर तक पानी से लबालब भरें और उसे एक बड़ी परात या तसले में खड़ा करें। एक खाली प्लास्टिक की थैली में फूंककर हवा भर लें। फिर थैली को बाल्टी में डुबो दें। बाल्टी में से गिरने वाले पानी को इकट्ठा करें और उसका आयतन नापें।

छात्रों से कहें कि वे एक बार सामान्य रूप से सांस लेकर थैली में हवा भरकर उसका आयतन नापें (लगभग आधा लीटर)। फिर ज़ोर लगाकर थैली में फूंककर आयतन नापें (लगभग 4 लीटर)।

डायाफ्राम की क्रिया

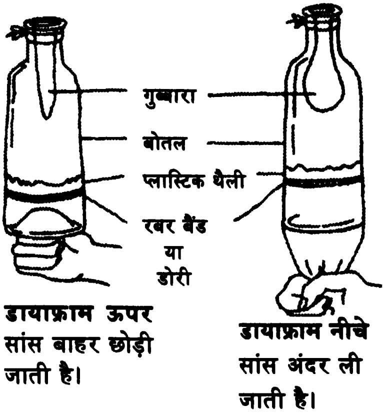

आवश्यक सामान

– एक प्लास्टिक की बोतल
– गुब्बारा
– प्लास्टिक की थैली या रबर की शीट

प्लास्टिक की बोतल का पेंदे वाला हिस्सा काट दें। अब गुब्बारे को बोतल के मुंह से इस प्रकार बांधें जिससे वह बोतल के अंदर लटके। बोतल के कटे पेंदे के स्थान पर एक प्लास्टिक की थैली बांधें।

छात्रों से अपने अवलोकनों को दबाव, आयतन, सांस अंदर खींचना, सांस बाहर छोड़ना जैसे शब्दों में वर्णन करने को कहें।

बाहर छोड़ी सांस का परीक्षण

आर्द्रता की मात्रा

आवश्यक सामान

– बॉलपेन की खाली रीफिल या पारदर्शी स्ट्रॉ पाइप।

एक खाली बॉलपेन की नली या खाली रीफिल को मुंह में रखकर अंदर की ओर सांस खींचें। अब बाहर की ओर नली में से ही सांस छोड़ें और नली पर जमी नमी की बूंदों को देखें। एक पारदर्शी प्लास्टिक की थैली के अंदर फूंकने पर भी इसी तरह की नमी दिखती है।

क्या नमी की बूंदें सांस अंदर लेने पर या फिर बाहर छोड़ने पर बनती हैं? यह नमी कहां से आती है? ऐसे प्रश्न छात्रों से पूछें।

कार्बन डाईऑक्साइड की मात्रा

आवश्यक सामान

– बॉलपेन की खाली रीफिल या स्ट्रॉ

– चूने का पानी

बॉलपेन की रीफिल या स्ट्रॉ को चूने के पानी में डालकर उसमें फूंक से बुलबुले बनाएं। कुछ देर बाद चूने का पानी दूधिया हो जाएगा – यह कार्बन डाईऑक्साइड की उपस्थिति का लक्षण है।

सांस के द्वारा अंदर ली हुई और बाहर फेंकी हुई हवा में कार्बन डाईऑक्साइड की मात्रा की तुलना करें।

फेफड़े के क्षेत्रफल में बढ़ोत्तरी

आवश्यक सामान

– कागज़

– कैंची

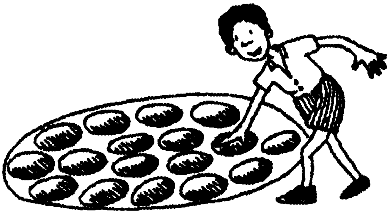

फेफड़े को दर्शाने के लिए ज़मीन पर एक गोला बनाएं। अब 'फेफड़ों' की परिधि ज्ञात करें। हम मान लेते हैं कि यह परिधि फेफड़े की सतह को दर्शाती है। अब फेफड़ों में हवा की थैलियों को दर्शाने के लिए उसमें बहुत से छोटे गोले बनाएं। इंसान के हरेक फेफड़े में 35 करोड़ हवा की थैलियां होती हैं।

छात्रों से पूछें कि एक बड़े गोले में कितने छोटे गोले समा सकते हैं।

छोटे गोलों की परिधियों का जोड़ कुल मिलाकर कितना हुआ?

फेफड़े को छोटी-छोटी हवा की थैलियों में बांटने से फेफड़े की सतह के क्षेत्रफल पर क्या प्रभाव पड़ेगा?

हवा की थैली (एल्वियोलस) का मॉडल

आवश्यक सामान

– लाल और नीले पेंट या स्केच पेन
– हवा से भरे गुब्बारे

पेंट या वॉटरप्रूफ स्केच पेनों से, फूले गुब्बारों के ऊपर, फेफड़ों की हवा की थैलियों की रक्त-शिराएं बनाएं। लाल नलियों (धमनियों) में ऑक्सीजनयुक्त रक्त होगा और नीली नलियों (शिराओं) में ऑक्सीजन रहित रक्त होगा।

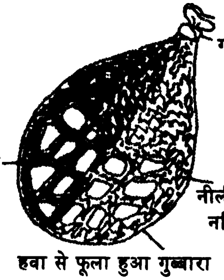

गैसों का आदान-प्रदान: एक खेल

आवश्यक सामान

– बड़े कागज़ की शीट
– बोतलों के ढक्कन
– बीज व पत्थर

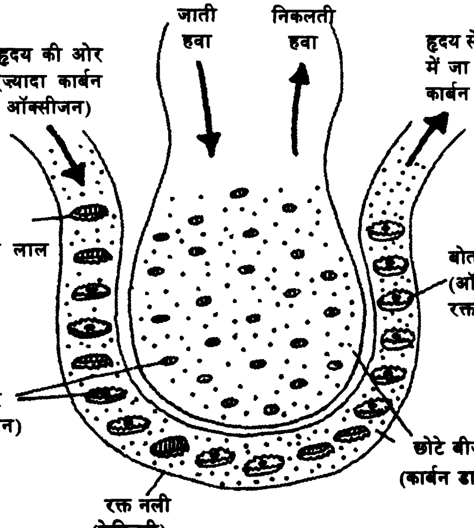

चित्र में दिखाए अनुसार रक्त नलियां और हवा के थैले बनाएं। उसके बाद छात्र, पत्थरों (ऑक्सीजन), बीजों (कार्बन डाईऑक्साइड) और बोतल के ढक्कनों (लाल रक्त कोशिकाओं) को इस चित्र में सजाएं। पत्थरों को कटोरीनुमा ढक्कनों में उठाकर ले जाया जा सकता है, परंतु बीज केवल रंगहीन रक्त (प्लाज़्मा) में इधर-उधर घूम सकते हैं।

गैसों का आदान-प्रदान
समझने के लिए एक खेल

आवश्यक सामान

कार्ड या कागज़ के टुकड़े जिन पर R, P, O, CO_2 लिखा हो।

यहां पर मेज़ हवा की थैली या एल्वियोलस दर्शाएगी। छात्र R (लाल रक्त कोशकाएं) या P (प्लाज़्मा यानि रंगहीन रक्त) के बिल्ले पहनेंगे। मेज़ के चारों ओर चक्कर लगाने के दौरान R वाले छात्र O (ऑक्सीजन) वाला कार्ड उठा लेंगे और P वाले छात्र CO_2 (कार्बन डाईऑक्साइड) वाले कार्ड मेज़ पर रख देंगे।

शिक्षकों के लिए एक उपयोगी किताब

अपने हाथ विज्ञान (मूल्य: 60 रुपए)

मंगवाने का पता:

एकलव्य,
ई –7/453 एच. आई. जी. अरेरा कॉलोनी,
भोपाल, म. प्र. 462016, फोन: 0755–463380

चुंबकत्व और विद्युत दो जुड़वां भाई

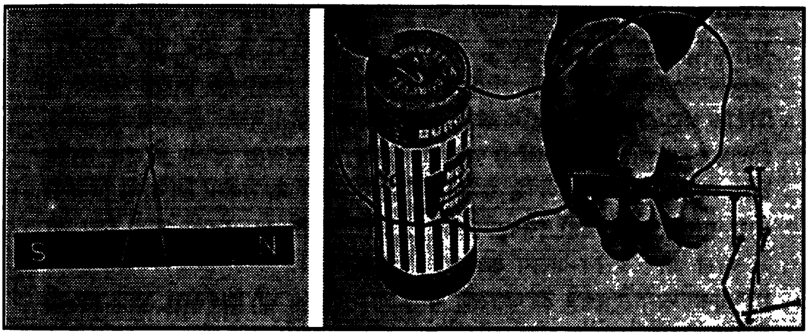

प्रदीप गाठास्कर

विद्युत ऊर्जा और चुंबकीय ऊर्जा को जुड़वां भाई ही कहना पड़ेगा क्योंकि दोनों की उत्पत्ति एक ही समय होती है। और वे एक-दूसरे के बिना रह भी नहीं पाते। इसीलिए हमने इन्हें विद्युत-चुंबकत्व नाम दिया है। वैसे इतिहास के हिसाब से देखा जाए तो चुंबकत्व को बड़ा भाई मानना पड़ेगा क्योंकि बिजली की खोज से कई शताब्दी पहले इंसान चुंबक के हैरत-अंगेज़ गुणधर्मों से वाकिफ था। विद्युत और चुंबकत्व के बीच इतना करीबी रिश्ता है यह बात तो बीसवीं शताब्दी की शुरुआत में कहीं जाकर समझ में आई।

लोहा और उसके समूह की धातुओं को ही चुंबक आकर्षित करता है। चुंबक के दो टुकड़े किए जाएं तो दो छोटे चुंबक बन जाते हैं, दो चुंबक एक-दूसरे को कभी आकर्षित करते हैं तो

कभी एक-दूसरे को विकर्षित करते हैं, इंसान ने इन सब बातों का पता किस तरह लगाया, जैसे कुछ सवालों पर चर्चा करने का प्रयास इस लेख में करेंगे।

चुंबकत्व का कारण

चुंबकीय पदार्थों में चुंबकत्व होने का रहस्य उस पदार्थ की परमाण्विक संरचना में निहित होता है। किसी भी मूलभूत पदार्थ का परमाणु ऋण आवेशित इलेक्ट्रॉन, धन आवेशित प्रोटॉन और उदासीन न्यूट्रॉन कणों से मिलकर बना होता है। इनमें से प्रोटॉन और न्यूट्रॉन तो परमाणु के केन्द्र में साथ-साथ रहते हैं, वहीं इलेक्ट्रॉन केन्द्र के चारों ओर अलग-अलग कक्षाओं में चक्कर लगाते रहते हैं। परमाणु में कितने प्रोटॉन, न्यूट्रॉन और इलेक्ट्रॉन हैं उसके आधार पर उस पदार्थ के गुणधर्म तय होते हैं। उदाहरण के लिए धातु विद्युत की सुचालक होती है तो अधातु विद्युत की कुचालक। पदार्थ का रंग, स्वाद, गंध, रासायनिक गुणधर्म ये सभी परमाणु में इलेक्ट्रॉन की संख्या पर निर्भर करते हैं।

चुंबक का विद्युत आवेश से कोई संबंध ज़रूर होना चाहिए इसका पहली बार 1820 में पता चला। इस बात का पता हेन्स ऑरस्टेड ने लगाया। उन्होंने देखा कि जब कभी किसी विद्युत सुचालक में से बिजली बहती है तो उसके पास रखे दिक्सूचक की सुई अपनी स्थिति में तुरंत बदलाव दिखाती है, मानो विद्युत प्रवाह खुद भी चुंबक बनाता हो। देखा जाए तो बिजली का बहना यानी हज़ारों इलेक्ट्रॉनों का प्रवाह है। ऑरस्टेड ने बताया कि विद्युत प्रवाह से चुंबकीय क्षेत्र का निर्माण होता है। ऑरस्टेड के प्रयोग के आधार पर ब्रिटिश वैज्ञानिक माइकल फैराडे ने कुछ और निष्कर्ष निकाले। फैराडे ने अपने प्रयोगों के बाद यह साफतौर पर सिद्ध किया कि विद्युत प्रवाह से चुंबकीय क्षेत्र बनता है तथा चुंबकीय क्षेत्र में बदलाव करके विद्युत धारा उत्पन्न की जा सकती है। यानी बिजली और चुंबक को जुड़वां भाई कहा जा सकता है।

परमाणु की संरचना और विद्युत प्रवाह से चुंबकत्व – इन दो तथ्यों से अब हम चुंबक के रहस्य को समझ सकेंगे। परमाणु की विविध कक्षाओं में इलेक्ट्रॉन निरंतर घूमते रहते हैं। साथ ही प्रत्येक इलेक्ट्रॉन लगातार अपनी धुरी पर तेज़ी से घूमता रहता है। विद्युत आवेशित इलेक्ट्रॉन की इन गतियों की वजह से परमाणु के केन्द्र में एक छोटा चुंबकीय क्षेत्र निर्मित होता है।

यहां इस महत्वपूर्ण तथ्य को भी ज़ेहन में रखना ज़रूरी होगा कि इलेक्ट्रॉन के नाभिक के इर्द-गिर्द घूमने से पैदा होने वाला चुंबकत्व काफी कमज़ोर होता है, बनिस्बत अपनी धुरी

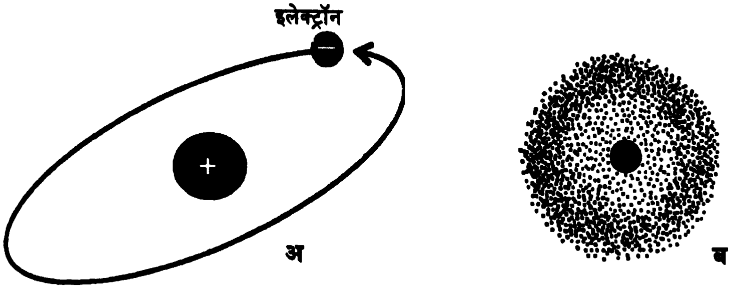

परमाणु संरचना और चुंबकत्वः कुछ पदार्थों में ही चुंबकत्व क्यों होता है इस सवाल की छानबीन करते हुए वैज्ञानिकों का ध्यान पदार्थों की परमाणु संरचना की ओर गया। परमाणु के नाभिक में धन आवेशित प्रोटॉन और उदासीन न्यूट्रॉन होते हैं जबकि ऋण आवेशित इलेक्ट्रॉन नाभिक के चारों ओर चक्कर लगाते हैं। 'अ' परमाणुओं की संरचना का इस सदी की शुरुआत में प्रचलित मॉडल। 'ब' बाद में समझ बनी कि इलेक्ट्रॉन एक ग्रह के रूप में न घूमते हुए नाभिक के इर्दगिर्द एक बादल के रूप में मौजूद होता है जो नाभिक के चारों ओर घूमने के साथ साथ अपनी धुरी पर भी घूम रहा होता है।

के इर्द-गिर्द धूमने से पैदा होने वाले चुंबकत्व के। यानी कि लोहा, निकल जैसे पदार्थ जिन्हें हम लौह चुंबकीय पदार्थ कहते हैं उनका चुंबकत्व इलेक्ट्रॉनों की इस दूसरी गति की वजह से होता है।

अगर ऐसा है तो फिर सब पदार्थ प्रबल चुंबकत्व प्रदर्शित क्यों नहीं करते? इसका कारण है कि ज़्यादातर तत्वों के परमाणुओं में इलेक्ट्रॉनों की जमावट ही ऐसी होती है कि इलेक्ट्रॉनों की इन गतियों का परिणामी चुंबकीय प्रभाव शून्य होता है।

जैसे उदाहरण के लिए एक ही कक्षा में स्थित दो इलेक्ट्रॉन यदि अपनी धुरियों पर एक-दूसरे की विपरीत दिशा में घूम रहे हों तो उनके विद्युत आवेश का कुल प्रभाव शून्य होगा। ऐसे परमाणुओं में चुंबकत्व नहीं होता।*

इसलिए लोहा या इसके जैसे कुछ तत्वों में ही प्रबल चुंबकत्व पाया जाता है। इसी तरह कुछ तत्व जो चुंबकीय नहीं होते, लेकिन उनके किसी अन्य पदार्थ के साथ इलेक्ट्रॉन के लेन-देन से, या इलेक्ट्रॉनों की भागीदारी करके बनने वाले यौगिक चुंबकीय हो सकते हैं।

जिस तरह इलेक्ट्रॉन के प्रवाह की वजह से चुंबकीय क्षेत्र निर्मित होता

** यहां केवल फेरोमेग्नेटिज़्म यानी लौह चुंबकत्व के संदर्भ में यह कहा गया है।*

अ

अचुंबकित लोहा

ब

आंशिक रूप से चुंबकित लोहा

स

प्रबल रूप से चुंबकित किया लोहा

द

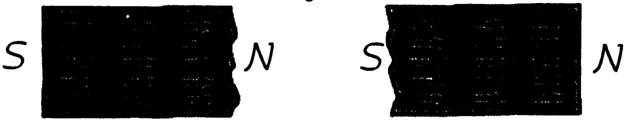

जब किसी चुंबक के दो टुकड़े किए जाते हैं तो दोनों टुकड़े शक्तिशाली चुंबक बने रहते हैं।

प्रत्येक लोहे के परमाणु का चुंबकत्व इतना शक्तिशाली होता है कि आस-पास के परमाणुओं में अंत:क्रिया से उस क्षेत्र के समस्त परमाणुओं का चुंबकीय अक्ष एक ही दिशा में कतारबद्ध हो जाता है। ऐसे एक ही चुंबकीय दिशा में पंक्तिबद्ध परमाणुओं के क्षेत्र को चुंबकीय डोमेन कहते हैं। प्रत्येक डोमेन पूर्णतः चुंबकित होता है और लाखों परमाणुओं से बना होता है। लोहे के एक कण में ऐसे कई सारे डोमेन हो सकते हैं।

अ. लोहे का प्रत्येक टुकड़ा चुंबकीय गुण प्रदर्शित नहीं करता क्योंकि उस टुकड़े में मौजूद सब डोमेन का चुंबकीय अक्ष एक ही दिशा में नहीं होता, प्रत्येक डोमेन स्वतंत्र रूप से किसी भी तरफ इंगित हो सकता है। चित्र में तीर डोमेन दर्शा रहे हैं, उनका आगे का सिरा उत्तर ध्रुव और पीछे का हिस्सा दक्षिण ध्रुव।

ब. थोड़ा-सा चुंबकित लोहे का टुकड़ा। लोहे के टुकड़े के पास चुंबक लाने पर ऐसी स्थिति बन सकती है। अगर पास में रखा गया चुंबक शक्तिशाली हो तो उसे हटाने के बाद भी लोहे के टुकड़े में कमज़ोर चुंबकत्व बना रहेगा।

स. लोहे का टुकड़ा एक अत्यन्त शक्तिशाली चुंबक बन गया है जिसमें सब डोमेन एक ही दिशा में श्रेणीबद्ध हो गए हैं, जिससे लोहे के टुकड़े के किनारों पर बलशाली उत्तर और दक्षिण ध्रुव बन जाएंगे।

द. इस शक्तिशाली चुंबक के अगर दो टुकड़े कर दिए जाएं तो वे दोनों टुकड़े भी प्रबल चुंबक बने रहेंगे।

है, उसी तरह चुंबकीय क्षेत्र की वजह से इलेक्ट्रॉन की परिस्थितियों में भी बदलाव आते हैं। इसकी वजह से ऐसे कई परमाणु जो मूलतः चुंबकीय नहीं हैं उन्हें चुंबकीय क्षेत्र में रखने पर उनके इलेक्ट्रॉन की गतियां बदल जाती हैं। लेकिन इन बदलावों का मिला-जुला परिणाम शून्य ही रहेगा ऐसा ज़रूरी नहीं है। और इस वजह से चुंबकीय क्षेत्र में कुछ अचुंबकीय परमाणु चुंबकीय बन जाते हैं। हां, यह सही है कि ऐसा चुंबकत्व काफी कम तीव्रता का, यानी कमज़ोर होता है।

जिस तरह बूंदी के लड्डू का हर दाना बूंदी होता है, उसी तरह चुंबक का हर परमाणु खुद एक चुंबक होता है। जिस तरह पक्का मकान बनाने के लिए कई मज़बूत ईंटों की ज़रूरत होती है, उसी तरह तीव्रता वाले चुंबक कुछ खास चुंबकीय परमाणुओं से बने होते हैं। इस प्रकार के परमाणु यदि पदार्थ में मौजूद हों (जैसे लोहा, स्टील आदि) तब भी इनसे चुंबक बन ही जाए यह ज़रूरी नहीं है। उदाहरण के लिए लोहे के परमाणु सूक्ष्मरूप में चुंबक होने के बावजूद उनके चुंबकीय अक्ष विभिन्न दिशाओं में बिखरे होते हैं और इस वजह से उनका कुल जमा चुंबकीय बल सामान्यतः लगभग शून्य होता है। दरअसल जैसा कि सामने वाले चित्र में दर्शाया गया है, लोहे व अन्य चुंबकीय पदार्थों में चुंबकीय अक्षों के कतारबद्ध होने की घटना लाखों परमाणुओं के क्षेत्र के स्तर पर होती है, जिन्हें डोमेन कहा जाता है।

यदि ऐसा कुछ किया जा सके ताकि ये परमाणु एक ही दिशा में अनुशासित हो जाएं तो चुंबकीय क्षेत्र की सम्मिलित ताकत को हम देख सकते हैं। जैसे कक्षा में 'सर' आने पर सारे बच्चे चुपचाप ब्लैक-बोर्ड की तरफ मुंह करके बैठ जाते हैं, उसी तरह हरेक परमाणु का चुंबकीय क्षेत्र एक-दूसरे के साथ मिलकर एक शक्तिशाली चुंबकीय क्षेत्र बनाता है, जिस वजह से एक ओर उत्तरी ध्रुव और दूसरी ओर दक्षिणी ध्रुव बनता है। हरेक परमाणु एक छोटा चुंबक होने के बावजूद किसी पदार्थ के करोड़ों परमाणु एक साथ होने पर उनसे बेहद प्रबल चुंबक बनता है। लेकिन जिन तत्वों के परमाणुओं में चुंबकत्व नहीं होता – उदाहरण के लिए गंधक, कार्बन – उनके परमाणुओं की कितने भी अनुशासित तरीके से जमावट की जाए फिर भी उनसे चुंबक नहीं बनाया जा सकता। इसीलिए लकड़ी पर चुंबक का कोई प्रभाव नहीं पड़ता।

लेकिन यह सवाल उठ सकता है कि आखिरकार लौह-पदार्थ में बिखरे हुए परमाणुओं की अनुशासित तरीके से जमावट करता कौन है? कुदरती तौर पर मिलने वाले चुंबकीय पत्थर (लोड स्टोन) कैसे बनते हैं? संभव है

कि चुंबकीय पत्थर, आकाश से ज़मीन पर गिरने वाली बिजली की वजह से बनते हों। आमतौर पर बरसात के दिनों में बादलों पर इकट्ठा हुआ विद्युतीय आवेश धरती पर तेज़ कौंध के साथ आता है। बिजली जहां पर गिरती है यदि वहां लौह-अयस्क बिखरा हो तो बिजली द्वारा निर्मित प्रबल चुंबकीय क्षेत्र अयस्क के टुकड़ों में परमाणुओं को एक ही दिशा में जमाना संभव बना सकता है, ऑरस्टेड द्वारा किए गए प्रयोग की तरह। लेकिन आसमान से गिरने वाली बिजली में तो कई गुना ज़्यादा आवेश होता है जिसकी वजह से लौह अयस्क चुंबक में तब्दील हो सकता है।

चुंबक और विद्युत

सन् 1821 तक विद्युत और चुंबकत्व ये दोनों जुड़वां भाई हैं इस बात का पता तक नहीं था। सिर्फ कुदरत में पाए जाने वाले चुंबक और किसी लोहे के टुकड़े से बनने वाले चुंबक के बारे में उस समय तक जानकारी थी। चुंबक और बिजली के नए रिश्ते की जानकारी डेनमार्क के हैन्स क्रिश्चियन ऑरस्टेड को मिली। 1821 में ऑरस्टेड अपने दोस्त को दिखा रहा था कि सुचालक तारों में से बिजली किस तरह बहती है। उस समय प्रयोगशाला का दिक्सूचक ऑरस्टेड के उपकरण के पास रखा हुआ था। जब भी तारों में बिजली प्रवाहित होती या प्रवाह को बंद किया जाता तो दिक्सूचक एक पल भर के लिए अपनी दिशा बदलता था।

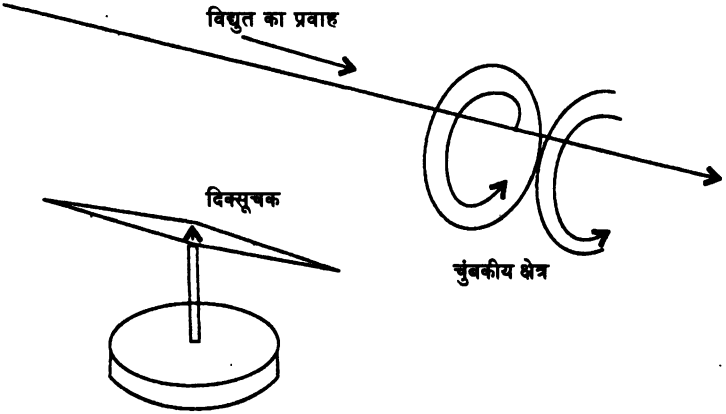

हालांकि दिक्सूचक तारों से कुछ दूरी पर था इसलिए तारों की बिजली और दिक्सूचक में पक्के तौर पर क्या हो रहा है यह बता पाना कठिन था। अगर एक चुंबकीय क्षेत्र दिक्सूचक को विचलित कर सकता है, तब तारों से बहने वाली बिजली और चुंबकीय क्षेत्र का कुछ रिश्ता ज़रूर है – ऐसा ऑरस्टेड का पक्का विश्वास था। बिजली के बहाव में जब-जब बदलाव किया जाता है तब चुंबकीय क्षेत्र निर्मित होता है ऐसा विचार ऑरस्टेड ने प्रस्तुत किया। ऑरस्टेड के इस विचार की वजह से इन दोनों भाइयों का पुनर्मिलन हो सका।

ऑरस्टेड ने जो प्रयोग किया उसे आप भी आसानी से करके देख सकते हैं। ऑरस्टेड के प्रयोग पर फ्रेंच वैज्ञानिक आंद्रे एम्पियर ने काफी सोच-विचार किया और चुंबक और विद्युत के आपसी रिश्ते को एक गणितीय सूत्र के रूप में दिखाया। इसके बाद ही चुंबक की एक नई किस्म विद्युत-चुंबकत्व समझ में आ सका। यानी चुंबक, बिजली के बहाव से भी बनाया जा सकता है यह समझ में आया। उदाहरण के लिए अपने घरों में इस्तेमाल होने वाली 'डोर बेल' के हथौड़े की टन-टन बिजली की वजह से बनने वाले विद्युत-चुंबक से ही संभव हो पाती है।

एम्पियर ने अपने प्रयोग को आगे बढ़ाकर दिखाया कि तारों में से बहने वाली विद्युत धारा यदि चुंबकीय क्षेत्र का निर्माण कर रही है तो ऐसे दो तारों के बीच आकर्षण या विकर्षण निर्मित होता है। यदि दो तारों में विपरीत दिशा में विद्युत धारा बह रही हो तो इन तारों के बीच चुंबकीय आकर्षण पैदा होता है। लेकिन यदि दो तारों में एक ही दिशा में विद्युत धारा प्रवाहित हो रही हो, तो तारों के बीच निर्मित चुंबकीय क्षेत्र तारों को विकर्षित करेगा। एम्पियर के इन प्रयोगों से विद्युत धारा का बहाव चुंबकीय क्षेत्र निर्मित करता है, यह साबित हो गया। आज एम्पियर का यह नियम विद्युत चुंबकत्व के चार प्रमुख सिद्धांतों में से एक है।

बदलता हुआ चुंबकीय क्षेत्र, विद्युत चालकों में विद्युत धारा प्रवाहित करता है, यह माइकल फैराडे ने साबित करके दिखाया। इस सिद्धांत का इस्तेमाल बिजली पैदा करने के लिए जनरेटरों में किया जाता है। फैराडे का यह नियम, एम्पियर द्वारा प्रतिपादित सिद्धांत का प्रतिबिम्ब था। विद्युत चुंबकत्व के नियमों में दूसरा नियम 'फैराडे का सिद्धांत' कहलाता है। इस तरह एम्पियर एवं फैराडे ने विद्युत व चुंबकत्व में परस्पर संबंध स्पष्ट किया।

इससे भी आगे जाकर जेम्स क्लार्क मेक्सवेल ने विद्युत चुंबकीय तरंगें किस तरह बनती हैं और इनका बहाव किस

तरह होता है, इसका गणितीय सूत्र प्रस्तुत किया। मेक्सवेल ने विद्युत चुंबकत्व के सिद्धांतों की गणितीय व्याख्याएं प्रस्तुत की और विद्युत चुंबकत्व के चार नियमों को चार समीकरणों द्वारा दिखाया। मेक्सवेल द्वारा दर्शाए समीकरणों के कारण विद्युत, चुंबक और विद्युत चुंबकत्व के सभी गुणधर्म सहजता से समझ में आ सके। इसलिए विद्युत-चुंबकत्व के चार आधारभूत समीकरणों को 'मेक्सवेल समीकरण' कहा गया।

घरों में और हमारे ईर्द-गिर्द मौजूद काफी सारी चीज़ें विद्युत चुंबकत्व पर निर्भर हैं, तो इन दो जुड़वां भाइयों से हमारी रोज़ मुलाकात होती ही रहेगी।

शिक्षकों के लिए चुंबक अध्याय पढ़ाने के लिए मार्गदर्शिका

विद्यार्थी क्या सीखेंगे:

1. कुछ चुनिंदा चीज़ें ही चुंबक की ओर आकर्षित होती हैं।
2. ऐसी सभी चीज़ों में लोहा होता है।
3. चुंबकत्व, पदार्थ की अणु-परमाणु की संरचना से निर्मित होता है।

आवश्यक सामान:

1. विविध चीज़ें जिनमें लोहे से बनी चीज़ें हों और ऐसी चीज़ें भी जिनमें लोहा न हो। जैसे चम्मच, कान की बाली, चॉक, डस्टर, दवाई की गोलियां, पिन, जंग लगा सामान आदि।
2. एक सामान्य चुंबक।

पहला पीरियड:

विद्यार्थियों को चुंबक के बारे में क्या पता है, उन्होंने पहले कभी चुंबक देखा है या इस्तेमाल किया है क्या, इस बारे में जानकारी लीजिए। इस पीरियड में छात्रों को अपने अनुभव सुनाने दीजिए। पीरियड के अंतिम हिस्से में विविध पदार्थों पर चुंबक का क्या असर होता है यह पूरी कक्षा को दिखाइए।

पीरियड दो:

कक्षा के सभी बच्चों की 5-5 की या 10-10 की टोलियां बनवाइए। हरेक टोली को ऊपर बताया सामान मिल गया है यह ज़रूर पक्का कर

लें। इन टोलियों को आपके द्वारा दिखाए गए प्रयोग करने हैं। लेकिन इससे पहले कौन-सी चीज़ें चुंबक द्वारा आकर्षित होंगी और कौन-सी नहीं, इसके बारे में विद्यार्थियों को आपस में चर्चा करने दीजिए।

इसके बाद टोली के हरेक बच्चे को, दिए गए हरेक सामान की चुंबक से जांच करनी है; और अपनी कॉपी में लिखते जाना है कि कौन-सी चीज़ें चुंबक से आकर्षित होती हैं और कौन-सी नहीं? साथ ही छात्रों को यह भी लिखते जाना है कि उनके पूर्वानुमान के हिसाब से चुंबकीय लगने वाली चीज़ों में से कौन-कौन सी चुंबकीय निकली या चुंबकीय नहीं निकली।

कुछ चीज़ें चुंबक की ओर आकर्षित क्यों होती हैं? ऐसी चीज़ों में क्या समानता है, उनके कौन-से गुण महत्वपूर्ण लगते हैं, इस बारे में विद्यार्थियों से चर्चा कीजिए।

पीरियड तीन:

चुंबक और लौह सामग्री का इस्तेमाल करते हुए हरेक टोली को इस लेख में सुझाए प्रयोग और अन्य प्रयोग करने के लिए पर्याप्त समय दीजिए। लेकिन बच्चों को बाद में यह भी बताना है कि उन्हें चुंबकों की कौन-कौन-सी खासियतें पता चलीं। हरेक टोली अपनी-अपनी खोज कक्षा में प्रस्तुत करे।

चुंबकीय क्षेत्र और उसका विद्यार्थियों द्वारा खोजी गई खासियतों से किस तरह सहसंबंध बैठ पाता है इस बारे में चर्चा कीजिए। इसके लिए कुछ सरल डायाग्राम, परमाणु संरचना आदि का भी उपयोग किया जा सकता है। विद्यार्थियों की आयु को ध्यान में रखकर स्पष्टीकरण को संक्षिप्त या विस्तृत किया जा सकता है।

चर्चा:

1. धरती का चुंबकीय क्षेत्र कुछ हज़ार सालों में पलट जाता है यानी उत्तरी ध्रुव, की जगह दक्षिणी ध्रुव आ जाता है। ऐसा यदि निकट भविष्य में हुआ तो उसके क्या परिणाम निकलेंगे? भूवैज्ञानिकों को ध्रुवों के पलटने की जानकारी किस तरह मिली?
2. चुंबकीय और विद्युतीय क्षेत्रों के एकत्रीकरण से क्या-क्या लाभ मिले? विद्युत-चुंबकत्व का इंसान ने क्या इस्तेमाल किया, विज्ञान में अलग-अलग विषयों को साथ-साथ, एक जगह लाने से क्या लाभ मिलते हैं?

3. पक्षी -जीवाणु अपने लंबे सफर के दौरान पृथ्वी के चुंबकीय क्षेत्र का इस्तेमाल करते हैं इस तथ्य की खोज की जा चुकी है। इस जानकारी से आगे चलकर इंसान किस तरह के फायदे ले सकेगा।

4. माइकल फैराडे की खोज से चुंबकीय क्षेत्र से बिजली को बनाया जा सका और जनरेटर की खोज हो सकी। आज हमारी ज़िंदगी में इस एक खोज से कितनी तब्दीली आ गई है। अपने पास-पड़ोस में, घर में पूछताछ करके देखो कि क्या लोग माइकेल फैराडे और उसकी खोज के बारे में जानते हैं? क्या तुम उन लोगों को इस बारे में कुछ बता सकोगे?

** इन प्रश्नों में दिए गए चुंबकत्व के कुछ पहलुओं और अन्य जानकारी के लिए संदर्भ के अंक 14, 16, 29 और 30 में दिए गए लेखों को देखिए।*

प्रदीप गोठोस्कर: स्कूली बच्चों को विज्ञान पढ़ाने का शौक। साथ ही विज्ञान लेखन में रुचि।
यह लेख मराठी संदर्भ अंक-10, अप्रैल-मई, 2001 में दिए गए लेख का संपादित रूप है।
मराठी से अनुवाद: माधव केलकर।

सवालीराम ने पूछा है सवाल

इस बार सवालीराम से बच्चों ने दो सवाल पूछे हैं:

सवाल: पहाड़ कैसे बने?

सवाल: दिन में तारे क्यों नहीं दिखाई देते?

— सतीश यादव, सुशील यादव
कक्षा 8वीं, नालंदा पब्लिक स्कूल, होशंगाबाद।

यदि आपके पास इन सवालों के जवाब हों तो
निम्न पते पर जल्द-से-जल्द भेजिए।

संदर्भ
द्वारा, एकलव्य
कोठी बाज़ार, होशंगाबाद, म. प्र. पिन: 461001
फोन: 07574 – 53518

विज्ञान

समाज ....

और शैक्षिक नवाचार

प्रो. यशपाल

और समाज का रिश्ता बना रहे और समाज पाठ्यक्रम में संबद्धता बनी रहे तो समाज के सवाल स्कूलों में आएंगे उनके जवाब भी मिलेंगे और कुछ सृजन भी होगा।

ये तो आपको पता चल गया है कि मेरी दोस्ती, मेरा साथ इस प्रोग्राम के साथ शुरू से रहा है। मुझे 1983-84 में बुलाया था। तब आने से पहले मैं अपने पुराने कागज़ातों को देख रहा था तो मुझे एक कागज़ मिला जो मैंने सन् 1972 में लिखा था – 'सम अटैम्पट टू चेंज द पैटर्न ऑफ एजुकेशन इन इंडिया।' वो लिखा था जब होशंगाबाद विज्ञान शिक्षण कार्यक्रम शुरू हुआ था और 16 स्कूलों के शिक्षकों के साथ पहली ट्रेनिंग हुई थी।

बारह साल गुज़र गए, हम कितना आगे बढ़े हैं? अगर इस तरह से सोचेंगे तो आपको लगेगा कि नहीं भाई, कोई फायदा नहीं है। पर दूसरी जो परम्परागत शिक्षा चल रही है, वह तो बरसों से चल रही है तो उससे भारत बदल गया क्या? कोई भी ऐसी चीज़ लीजिए। आप इस प्रकार से देखिए कि यहां पर जो काम शुरू हुआ वह बड़ा है, काफी बड़ा है। अगर कोई कमियां हैं तो वे इस प्रोग्राम की खामियां नहीं हैं, वो इस समाज की

खामियां हैं जो यह कार्यक्रम दिखाता है। खतरे तरह-तरह के हैं देश के पास, मैं थोड़ा-सा सुन रहा था कि विज्ञान तो एक ही होता है, तो विज्ञान तो ऐसे पढ़ाया जाए कि हावर्ड की किताबें ले लो या फिर इंग्लैण्ड वालों की किताबें ले लो; उनको यहां हिन्दी में अनुदित कर बांट दो, क्या ज़रूरत है मेहनत करने की। विज्ञान तो विज्ञान है, मैग्नेटिज़्म तो मैग्नेटिज़्म है, साउण्ड साउण्ड है, इलेक्ट्रीसिटी इलेक्ट्रीसिटी है। परन्तु मुझे यह समझ में नहीं आता कि अगर अमेरिका ने किताबें बनाई हैं तो इंग्लैण्ड को क्या ज़रूरत लगती है कि वह अपनी किताबें बनाए, वो भी वहां से ले ले। जापानियों को क्या ज़रूरत पड़ती है, फ्रांसीसियों को क्या ज़रूरत पड़ती है। कोई बात तो होगी न!

ज़िंदगी से जुड़ा ज्ञान

देखिए वह ज्ञान जिसका किसी और ज्ञान से लेन-देन का रिश्ता बिल्कुल नहीं है, जिसका आपकी ज़िन्दगी से कोई रिश्ता नहीं है, वह आपके लिए खतरनाक है, या बिल्कुल फालतू है, किसी काम का नहीं है। उसमें उपजाऊपन नहीं होता। अब आप कहेंगे कैसी बात कर रहे हो, इसका कोई उदाहरण दो। मुझे ऐसा लगता है कि 30 साल पहले से हमारे स्कूलों, कॉलेजों, यूनिवर्सिटियों में पढ़ाए जाने वाले विज्ञान का हमारे आसपास के जीवन से ताल्लुक नहीं रहा है या बहुत कम ताल्लुक रहा है, इसलिए वह पनप नहीं पाया है। लोग बताते हैं कि हमारे आई. आई. टी. से पढ़े हुए लोग बाहर जाते हैं तो लाखों-करोड़ों रुपए कमाते हैं। आप कहते हैं कितने अच्छे लोग हैं, हम उन्हें मौका नहीं देते। आई. आई. टी. वाले लोग वही किताबें पढ़ते हैं, उसी तरह से पढ़ते हैं जो बाहर चल रही होती हैं। जब वे बाहर जाते हैं तो आसपास जो इण्डस्ट्रीज़ चल रही हैं उसमें एकदम से फिट हो जाते हैं; ये बाहर के लिए तैयार किए गए लोग होते हैं और इसलिए बाहर ज़्यादा फिट होते हैं।

उनसे यहां की मुश्किलों को समझने को कहें तो वे कहते हैं – ना, पहले आप समाज को बदलिए, तब हम यहां काम करेंगे। अरे, कैसी पढ़ाई है जो आप कहते हैं कि समाज को बदलो तब हम काम करेंगे। समाज को बदलना किसका काम है, कौन बदलेगा समाज को? यदि शिक्षित लोग, पढ़े-लिखे लोग कोशिश नहीं करेंगे समाज को बदलने की? यदि अपनी ज़मीन के साथ रिश्ता नहीं बनाएंगे तो जितना ज्ञान जितना विज्ञान आप देंगे वह कागज़ी रह जाएगा, पनपेगा नहीं, उभरेगा नहीं। लोग बड़ों की चाकरी करते रहेंगे। हां, इधर-उधर थोड़ी-सी चीज़ें निकल सकती हैं।

मैं समझता हूं होशंगाबाद विज्ञान

इस तरह पढ़ाने का एक बड़ा भारी प्रयास है। अभी तक सफल हुआ, नहीं हुआ? आप कह सकते हैं कि इतने सौ स्कूलों में चल रहा है तो एकदम असफल तो नहीं होगा। नापने के तरीके तरह-तरह के हो सकते हैं। एक बार मैं एक पब्लिक स्कूल के कॉनवोकेशन में गया था – प्राइज़ ड्रिस्ट्रीब्यूशन भी था। तो मैंने कहा, "भई, शिक्षा का क्या करें। तुम्हारे स्कूल में ही कुछ करके देखो।" उन्होंने कहा, "हमारे स्कूल में क्या गड़बड़ है?" मैंने कहा कि पढ़ाई ठीक से नहीं होती। तो वो जनाब कहते हैं, "कैसे ठीक नहीं होती? इतने फर्स्ट क्लास आते हैं, इतने डिस्टिंक्शन आते हैं . . .।"

अब आप मापने के तरीके खुद बनाएंगे और लोग उसी तरह से तैयार करेंगे तो फर्स्टक्लास, डिस्टिंक्शन तो आएंगे ही। कुछ लोग तो ऐसे होते हैं उनको पढ़ाओ, न पढ़ाओ, गड़बड़ करो, फर्स्टक्लास तो आ ही जाती है उनकी। किसी भी नवाचार के बारे में अक्सर सवाल उठता है कि आई. ए. एस. में कितने आए, आई. आई. टी. में कितने आए? आई. आई. टी. वालों से मैं कहता हूं आपने जितना फायदा किया है, उससे कहीं ज़्यादा नुकसान किया है। वह इस तरह कि आप आई. आई. टी. एण्टरेंस बनाते हैं, उसका असर यहां पहली, दूसरी, तीसरी श्रेणी पर पड़ता है। यहां पर सब उसी तरह के रट्टेबाज़ लोग तैयार करना शुरू कर देते हैं, उसी तरह के बनने के लिए कोचिंग क्लासेस चलती हैं।

चंडीगढ़ में कहते हैं, यहां तो 80 हज़ार रुपए लगते हैं एक साल की कोचिंग के लिए। लोगों ने बच्चों पर इतना भार डाल दिया है कि उनके दिमाग कुंद हो जाते हैं। आई. आई. टी. वगैरह जैसी जगह में, जो बच्चा पास होकर प्रवेश पा जाता है, वो शुरू में खुश होता है। और जो वहां नहीं पहुंच पाता, वो खत्म हो जाता है। पर मैं ये मानता हूं कि जितना दबाव होता है, जिस प्रकार से तैयारी करनी पड़ती है उसकी वजह से – जो पास भी हो जाता है वो उतना नहीं रहता जो उससे पहले था। उस प्रक्रिया से लोगों के सोचने के तरीके पर स्थाई रूप से क्षति पहुंचती है।

कुछ नए की भूमिका

अगर ये नहीं बदलेगा तो बाकी चीज़ें नहीं बदल सकती। तो एक तरह से हस्तक्षेप है, गहरा हस्तक्षेप है ये – कुछ नए तरीके से करने का, समझने का, कराने का। मैं यहां बच्चों से बात कर रहा था। किसी पाठ्यक्रम में ये महत्वपूर्ण नहीं कि कितने सारे नाम आ गए और कितने सारे आपने पढ़ लिए, पर यह कि आपको गहरी समझ कहां-कहां से आई। तो मैंने बच्चों से पूछा कि समझ क्या होती है? मनुष्य

बना समझने के लिए है। अगर ऐसी चीज़ डाल दी जाए जो समझ में न आए, जिसमें आनंद न आए – तो वो काम की चीज़ नहीं रहती। पढ़ने-पढ़ाने में ऐसी चीज़ें होना चाहिए जिनमें थोड़ा-थोड़ा आनंद आए, क्योंकि यह भी सही है कि हर चीज़ पूरी तो नहीं समझी जा सकती।

ओज़ोन की परत

एक उदाहरण लेकर देखते हैं। जब भी बच्चों से पूछता हूं कि ओज़ोन क्या होती है, उसके बारे में कुछ बताओ, ओज़ोन ऊपर ही क्यों रहती है; तो अक्सर रटा-रटाया जवाब सुनने को मिलता है।

जब बात चल रही थी तो मैंने दिमाग में ऐसी तस्वीर बनाई – ड्रामा करने वाली। ऑक्सीजन तो हर कहीं है। काफी सारी अल्ट्रावॉयलेट आई, कम ऊर्जा की। उसमें ज़्यादा ऊर्जा नहीं थी, वो आगे बढ़ती गई, कुछ नहीं हुआ; वो चलती गई, चलती गई, ज़मीन पर आई और हमारी बरबादी की उसने। ऑक्सीजन का कुछ नहीं हुआ क्योंकि ऑक्सीजन के दोनों परमाणुओं ने एक दूसरे को बहुत ज़ोरों से पकड़ा हुआ था। अब थोड़ी ज़्यादा ऊर्जा वाली अल्ट्रावॉयलेट आई, सब तरह की आती रहती हैं, तो उसने ऑक्सीजन के दोनों परमाणुओं को अलग कर दिया। तो ऑक्सीजन अणु टूट गया। तो देखिए यह रहा बेचारा टूटा अणु। एक और ऑक्सीजन अणु घूमता-घूमता इसके पास आया, उसने इसकी अंगुली पकड़ ली तो ये तीन परमाणुओं वाली ओज़ोन बन गई। अब इन तीन एटम में इतना पक्का जोड़ नहीं है।

अब जो कम ऊर्जा वाली अल्ट्रावॉयलेट आई, जो पहले कुछ नहीं कर सकती थी, नीचे तक पहुंच जाती थी – वो ओज़ोन से टकराई और जो तीसरा एटम पकड़े था उसे अलग कर दिया। इसे अलग करने में अल्ट्रावॉयलेट खुद मर गई, एबज़ॉर्ब हो गई, सोख ली गई। किसी को तोड़ा तो खुद तो एबज़ॉर्ब होना ही था। इसको कहते हैं एबज़ॉर्ब्शन ऑफ अल्ट्रावॉयलेट, वो करती है ओज़ोन।

ओज़ोन के टूटने के और भी तरीके हो सकते हैं। क्लोरीन का एटम घूमता-घूमता आया कि अकेला हूं, अकेला हूं। ऑक्सीजन का भी एटम आया – वह भी कहता रहा अकेला हूं, अकेला हूं। दोनों ने हाथ पकड़ लिया; ये क्लोरीन ऑक्साइड बन गई। पर ऑक्सीजन को जुड़ने में इतना मज़ा नहीं आ रहा; ऑक्सीजन को और खाली एटम मिले तो मज़े का अणु बने ना। क्लोरीन ऑक्साइड घूमते-घूमते कभी-न-कभी ओज़ोन के पास पहुंच जाती है। ओज़ोन में तो ऑक्सीजन परमाणु हल्के से उंगुली पकड़े हैं, क्लोरीन ऑक्साइड

ओज़ोन का बनना और टूटना

ज़्यादा ऊर्जा वाली अल्ट्रावॉयलेट किरणों ने ऑक्सीजन के दोनों परमाणुओं को अलग कर दिया, ऐसा करने में वो खुद खत्म हो गई यानी सोख ली गई।

अलग हुए ऑक्सीजन परमाणु के साथ एक और ऑक्सीजन अणु आ जुड़ा, जिससे तीन परमाणुओं वाली ऑक्सीजन यानी ओज़ोन बन गई।

कम ऊर्जा वाली अल्ट्रावॉयलेट किरणें जो अब तक धरती तक पहुंच रही थीं, वे जब ओज़ोन से टकराईं तो ओज़ोन का तीसरा ऑक्सीजन परमाणु फिर से अलग हो गया; और कम ऊर्जा वाली ये अल्ट्रावॉयलेट किरणें ओज़ोन को तोड़ने में खत्म हो गईं।

ओज़ोन नष्ट होने का एक और तरीका यह भी है:

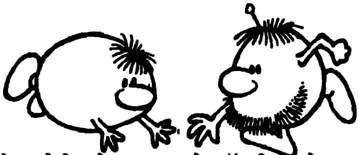

वातावरण में घूम रहे क्लोरीन के परमाणु ने ऑक्सीजन के परमाणु के साथ मिलकर क्लोरीन ऑक्साइड बना ली। परन्तु ऑक्सीजन को क्लोरीन से जुड़ने में इतना मज़ा नहीं आ रहा।

क्लोरीन ऑक्साइड का अणु घूमते-घूमते ओज़ोन के पास पहुंचा। क्लोरीन ऑक्साइड की ऑक्सीजन का परमाणु, ओज़ोन के ऑक्सीजन के तीसरे परमाणु के साथ हो लिया, जिससे ऑक्सीजन का एक नया अणु बन गया। परन्तु इस प्रक्रिया ने ओज़ोन को तोड़ दिया। क्लोरीन का परमाणु फिर से क्लोरीन ऑक्साइड बनाकर ओज़ोन के किसी और अणु को तोड़ेगा। क्लोरीन का एक परमाणु लाखों बार ऐसा कर सकता है, और ओज़ोन को नष्ट करता रह सकता है।

की ऑक्सीजन का एटम ओज़ोन के एटम को कहता है, "यार, मेरे पास आ जा।" इस तरह ऑक्सीजन के दो एटम मिले तो ऑक्सीजन का एक अणु बन गया, परन्तु इस प्रक्रिया में ओज़ोन को तोड़ दिया। इस तरह ओज़ोन टूट गई परन्तु अब वो क्लोरीन एटम फिर से स्वतंत्र रूप से घूम रहा है। फिर से एक ऑक्सीजन एटम घूमता-घूमता आया, उसने क्लोरीन से जुड़कर एक बार फिर ओज़ोन को नष्ट किया। दूसरी बार किया, तीसरी बार किया, इसी तरह एक लाख बार ओज़ोन को नष्ट कर दिया। तो क्लोरीन इसी वजह से हानिकारक है।

पर आपने देखा कि ओज़ोन के लिए ऑक्सीजन चाहिए। ऊंचाई पर अल्ट्रावॉयलेट आ रही है, ज़्यादा ऊर्जा वाली अल्ट्रावॉयलेट ऑक्सीजन अणु को तोड़कर परमाणु बनाए, वो परमाणु जाकर दूसरे अणु से मिले जिससे ओज़ोन बने; फिर यह ओज़ोन कम ऊर्जा वाली अल्ट्रावॉयलेट को एबज़ॉर्ब कर सकती है जो हमारे लिए हानिकारक होती है। अब पता चला कि ओज़ोन ऊपर क्यों रहती है – क्योंकि ओज़ोन पड़ी नहीं रहती, नई ओज़ोन पैदा होती है और मरती रहती है। केवल तीन मिनिट ज़िंदगी है ओज़ोन की, ओज़ोन का अणु तीन मिनट में मर जाता है, पर एक नया बन जाता है। तो अलग किस्म का ड्रामा वहां चल रहा है जिसकी वजह से कम ऊर्जा वाली अल्ट्रावॉयलेट हम तक पहुंच नहीं पाती; लेकिन हम क्लोरीन वगैरह ऊपर भेजकर ओज़ोन का नुकसान कर सकते हैं। मुझे लगता है कि बिल्कुल अपनी तरह से समझने का मसला है, कोई समीकरण नहीं है इसमें। इससे प्रक्रिया तो समझ में आ जाएगी, इतना ही नहीं इसमें इकोलॉजी है, ऑक्सीजन की क्या भूमिका है, पर्यावरण वगैरह, जैसी बहुत-सी बातें हैं।

विज्ञान के सामाजिक सरोकार

समझना भी अपने तरीके से ज़्यादा मतलब रखता है और अगर वो अपनी ज़िंदगी से जो उदाहरण निकले हों, उसके साथ जुड़ा हो तो विज्ञान भी रहन-सहन के साथ ताल्लुक रखता है। कोई बच्चा आकर कहे कि घर में एक शंख पड़ा था, कान में लगाया शांय-शांय की आवाज़ आती है शंख से। किस चीज़ की आवाज़ है? समुद्र की आवाज़ क्यों सुनाई देती है शंख में से? कान में हाथ लगाने पर भी ऐसा सुनाई देता है, ऐसा क्यों होता है? यही सवाल मैंने कई शिक्षकों से पूछा, कोई इस सवाल के बारे में बात ही नहीं करता है। मुझे याद है बचपन से मुझे यह आवाज़ आती थी तो मैंने कहा कि मैं भगवान को सुन सकता हूं। केरल में वो कहते हैं कि ऐसी आवाज़ आती है जैसे हल्की-हल्की लहरें

रेत के ऊपर टूट रही हैं। यदि आप हिमाचल में हों, वो कहेंगे कि ऐसा लगता माना हवा चल रही है पेड़ों में और सां-सां आवाज़ आ रही है। बात करते हुए भी यदि नहीं मिलाएंगे तो कैसे पता चलेगा कि ज़िन्दगी के साथ विज्ञान कहां मिल रहा है। तरह-तरह की और चीज़ें हैं जो हमारे रहन-सहन, खाने-पीने, जीव-वनस्पति और बहुत-सी और चीज़ों से जुड़ी हुई हैं। अगर उनको लेकर बात नहीं करेंगे तो कैसे होगा?

किस्सा मरुता का

एक आपने कहानी सुनी होगी मरुता के बारे में या जुगाड़ के बारे में। उसके ज़रिए मैं यह बताना चाहता हूं कि हमारी मनोवृत्ति क्या है? एक किसान था जो फौज में रहा था। पंजाब में रहता था और उसके पास पानी का पंप था। उसका डीज़ल पंप तो रोज़ दो-चार घंटे चलता था। तो उसने कहा कि चार घंटे चलता है, उसके बाद खाली बैठा रहता है। अच्छा पंप है, खराब होता है तो मैं ठीक कर लेता हूं, मेरा बेटा भी ठीक कर लेता है। ऐसे ही पड़ा रहता है खाली-खाली। इससे तो अच्छी तरह से काम लेना चाहिए। तो उसने लकड़ी की गाड़ी बनाई, उसके नीचे पहिए लगाए, स्प्रिंग लगाए, जीप के पुराने पार्ट्स लगाए, क्लच लगाया और रेडिएटर लगाकर उसने एक गाड़ी बना ली। फिर उसे डीज़ल पंप की मोटर के साथ लगा दिया तो गाड़ी बन गई।

गाड़ी चलने लग गई। 20-40 किलोमीटर की रफ्तार से तो जा ही सकती थी। थोड़े दिनों में गांव की सड़कों पर इसी गाड़ी से टैक्सी भी चलने लगी। किसी और ने देखा और उससे पूछा, "आपकी गाड़ी का नाम क्या है?" उसने कहा, "रोहतक।" किसी और ने बनाई और नाम रख लिया 'जुगाड़'। क्या जुगाड़ बनाया है! तो इस तरह से पंजाब में फैलने लगी, हरियाणा और राजस्थान में फैलने लगी। किसी ने विज्ञापन नहीं किया इसका। लोगों ने खुद किया। कहते हैं न, कम्यूनिकेशन कैसे होता है। मैं कम्यूनिकेशन के इंस्टीट्यूशन गया। मैंने कहा, "यार, तुम कम्यूनिकेशन स्टडी करते रहते हो, इसको (जुगाड़ को) स्टडी करो। यह इतनी जल्दी फैल कैसे गया।" मुझे नहीं लगता कि किसी

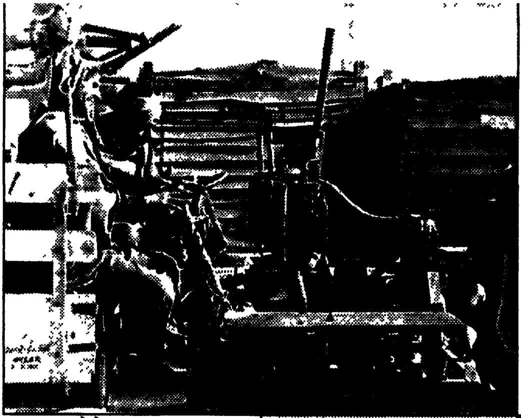

पंजाब, हरियाणा, राजस्थान में चलने वाले जुगाड़ या मरुता का इंजन वाला हिस्सा जिसमें डीज़ल पंप, रेडिएटर आदि पुर्ज़े दिखाई दे रहे हैं।

फोटोग्राफ: अमन मदान

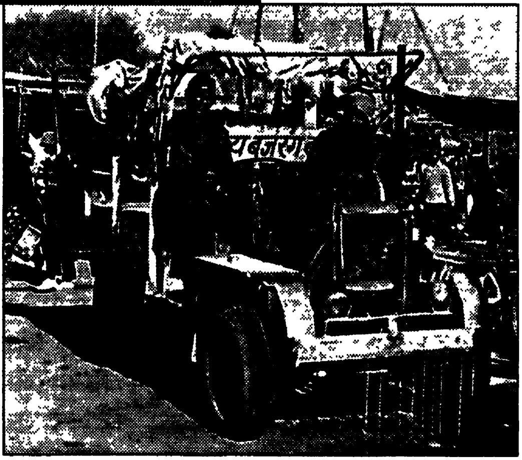

सामने से देखने पर मरुता कुछ इस तरह दिखाई देता है। इसका इस्तेमाल सवारी ढोने से लेकर सामान ढोने तक किया जाता है।

ने मेरी बात को गंभीरता से लिया हो और इसका अध्ययन किया हो।

फिर मैं आई. आई. टी. में गया, इंजीनियरिंग कॉलेज में गया। फिर मैंने कहा कि जुगाड़ बनाने का एक-एक प्रोजेक्ट हर बच्चे को करने दो, उसमें इतना कुछ सीखेंगे। मैकेनिक्स में इतना कुछ सीखेंगे और उसके बाद सोचो कि इसको कैसे आगे बढ़ाया जा सकता है? क्या इंप्रूव किया जा सकता है। उसमें कुल मिलाकर 20-30 हज़ार रुपए लगे थे। अब जगह-जगह फैल रहा है। एक उद्योगपति के पास गया। मैंने बताया कि ऐसा हुआ है। उन्होंने

कहा, "दे हेव एक्चुली डन इट! नो, नो, नो। इट शूड नेवर बी अलाउड ऑन द रोड।" सड़क पर नहीं आना चाहिए, इसको लायसेंस नहीं मिलना चाहिए। हुआ यही कि आर. टी. ओ. ने कहा कि यह गैर कानूनी है। कइयों के मरुता जब्त कर लिए, पर अभी भी चल रहे हैं गांवों में। दरअसल होना यह चाहिए था कि उस पर और शोध होता, अनुमति दिलवाने की कोशिश होती। खेत में चलता हुआ पंप थोड़ा प्रदूषण फैलाता है तो मरूता में भी थोड़ा प्रदूषण करने दो। यदि ट्रेक्टर ट्राली इस्तेमाल करने देते हो और लोग देखते हैं कि उनके लिए यह ज़्यादा संभव है तो वे इसे इस्तेमाल क्यों नहीं करें?

अन्य देशों में ये चीज़ नहीं है। चीन में या किसी और देश में किसी ने यह किया होता तो हम उनसे कहते कि उनसे टेक्नॉलॉजी ले लो। जब तक लोगों की ज़िंदगी के साथ, उनके नवाचार के साथ, उनके सोचने के साथ, उनकी सुविधा के साथ, पढ़ाई का जुड़ाव नहीं होगा, तो वो ऐसे ही अलग बनी रहेगी मानो कि एक स्टील के बक्से में आपने नॉलेज रख दिया, चाहे उम्दा-से-उम्दा नॉलेज लेकर आ जाएं। दुनिया भर से, लोहे के बक्से लाकर एक बक्सा यहां रक्खा, एक होशंगाबाद में रखा, एक भोपाल में रखा, एक दिल्ली में रखा। एक आई. आई. टी. बनाया, एक ये बनाया, वो बनाया। जब तक इन बक्सों में छेद नहीं होंगे, जब तक समाज के साथ नहीं जुड़ेंगे, तो उपजाऊ पढ़ाई नहीं होगी, देश आगे नहीं बढ़ेगा। अगर होशंगाबाद विज्ञान का यह स्तर रहा कि ज़मीन के साथ जुड़कर, लोगों की सोच के साथ जुड़कर, समझ के साथ जुड़कर पढ़ाई होगी तो इसका असर ज़रूर पड़ेगा।

कुछ मत करिए जिसमें आपको आनंद नहीं आता, और मैं सोचता हूं कि इस प्रकार समझने से - समझाने से, पढ़ने वाले को - पढ़ाने वाले को, जो आनंद मिलता है वो इसे आगे बढ़ाने का, इसे करते रहने का सबसे बड़ा कारण है। अगर आनंद नहीं आ रहा है तो सोचिए क्यों नहीं आ रहा है, कुछ गड़बड़ी ज़रूर होगी। रटने से आनंद नहीं आता, अगर समझने से आनंद आता है तो आनंद ढूंढते चलिए। इसमें तो आप काफी आगे बढ़ेंगे। तो कहां तक पहुंच गए आप, बहुत कुछ पहुंचे हैं – पर मानता हूं बहुत कुछ करने को अभी है।

अब मैं आपके सामने भी एक प्रश्न रखता हूं, जो कहते हैं न अपने कल्चर के साथ पढ़ाई का क्या ताल्लुक। चूडियां पहनी हैं कभी? रंगीन कांच की। तो देखिए कि इस प्रकार का सवाल आपको किसी बाहर की किताब में नहीं मिलेगा। मेरी बहन की खेलते-खेलते, शरारत करते हुए तीन चूडियां टूट गईं – एक

लाल, एक पीली और एक नीली। मैंने मां से इमामदस्ता लेकर उन्हें कूटकर चूरा बनाया क्योंकि मैं मांजा बनाने के लिए लुगदी बना रहा था। पर एक चीज़ मैंने देखी कि जब मैंने पीली चूड़ी का चूरा किया तो वह सफेद था, नीली का किया सफेद था, लाल का किया वो भी सफेद था, अब ये बताइए कि ऐसा क्यों? अब यह प्रश्न आपके जीवन के साथ जुड़ा हुआ है। ऐसे तरह-तरह के प्रश्न होते हैं। तो बताओ क्यों?

ये प्रश्न तो हमारे लोगों की आम ज़िंदगी के साथ जुड़े हुए हैं तो क्या आप कहेंगे ये विज्ञान के प्रश्न नहीं हैं? अब मुश्किल यह है कि शिक्षा में कई ऐसे भी सवाल होते हैं जिनमें पूरा ठीक नहीं, पूरा गलत नहीं। आपने कहा कि उसके जो छोटे-छोटे कण होते हैं उससे सब चीज़ें स्केटर होती हैं बिखर जाती हैं। यदि ऐसा ही हुआ तो रंग कहां गया? आप एक प्रयोग कीजिए, कोई लाल, नीला शीशा लेकर। उसमें से अगर लाइट गुज़रती है और हम अगर दूसरी ओर से देखें तो शीशा लाल दिखता है; और अगर उसके ऊपर सूर्य की रोशनी डालें तो जो प्रतिबिंब होता है वो तो वही सफेद का सफेद होता है न? कभी कोशिश कीजिएगा – सामने जा रही मोटरगाड़ियों पर तरह-तरह के रंगीन कांच लगे होते हैं। जब कभी उन पर सूरज की चमक पड़ती है, सूरज तो हमेशा चमकता सफेद दिखता है, चाहे कांच किसी भी रंग का हो। बात यह है कि जब किसी चीज़ पर लाइट पड़ती है तो उसका कुछ हिस्सा बाहर सतह से ही परावर्तित हो जाता है, और वह उसी रंग का होता है जो वस्तु का रंग है क्योंकि वह कांच के अंदर घुसा ही नहीं है।

जब आप किसी शीशे को पाउडर करते हैं, चूड़ी का बेहद महीन पाउडर किया तो उसका अन्दर तो रहता ही नहीं, केवल सतह ही सतह बच जाती है। और सतह से जो बिखराव या परावर्तन होता है वह उसी रंग का होता है जिस रंग की लाइट पड़ रही है। अगर वह सफेद है तो चूड़ी का रंग कोई भी रहा हो – पीला, लाल या नीला, पाउडर सफेद रंग का ही दिखेगा। ये कोई नई बात नहीं है, पर किसी ने नोटिस किया, सवाल किया, अनुभव किया?

यह सवाल आपके स्कूल में एक्सपेरीमेंट में होना चाहिए। इस प्रकार का कोई सवाल आए तो कोई नया प्रयोग करें; ये थोड़े ही है कि जो पुस्तक में लिखा है वही करना है रोज़-रोज़। आपके पाठ्यक्रम में आए न आए, आदत बना लीजिए इस तरह के एक्सपेरीमेंट करने की; केवल स्कूल में ही नहीं बाहर भी, तब नई-नई चीज़ें सामने आएंगी। इस तरह की

पचासों चीज़ें हो सकती हैं। बहुत सारे तरह-तरह के रंगों वाले साबुन के झाग बनाओ – साबुन लाल हो, हरा हो, परन्तु सब झाग सफेद बनेंगे, सब सफेद। यहां भी वही हुआ न कि सतह बहुत सारी बन गई, तो बाहर से ही परावर्तित होकर आ जाती है रोशनी। परन्तु साबुन की झाग से जो बुलबुले बनते हैं उनमें तो रंग दिखता है, तरह-तरह के रंग दिखते हैं। तो फिर वे कहां से आ जाते हैं? वे इंटरफेयरेंस कलर होते हैं, लाइट के इंटरफेयरेंस से बनते हैं। मोर के पंख में भी, इंटरफेयरेंस के रंग होते हैं; जो चमकते-चमकते रंग दिखते हैं, वे भी इंटरफेयरेंस से बनते हैं। उन पंखों में कोई पिगमेंट यानी रंजक वाला रंग नहीं होता।

तो इस प्रकार से आसपास की ज़िंदगी से उठे हुए सवाल, जो वैज्ञानिक सवाल हैं, उनको साथ में लाने की आवश्यकता है। कल्चर और विज्ञान दोनों अलग नहीं होना चाहिए, दोनों में गहराई वही रहे। अगर मुश्किलें दिखती हैं तो मुश्किलें हर कहीं रहती हैं। करने का जो रास्ता चलना है, वही सबसे अच्छी बात है। रास्ता चलते-चलते आनंद आए तो आपको इधर-उधर सुन्दर फूल दिखेंगे। एक भी ऐसी, जानने लायक बात दिखी तो आपको लगेगा काम सफल हुआ।

प्रोफेसर यशपाल: वरिष्ठ अंतरिक्ष वैज्ञानिक और विज्ञान को लोकप्रिय बनाने में सक्रिय। स्कूली शिक्षा में 'बस्ते के बोझ' को कम करने के लिए सरकार को सुझाव देने के लिए बनी 'यशपाल समिति' के अध्यक्ष थे। पूर्व में कई संस्थाओं से संबद्ध रहे हैं। टाटा इंस्टीट्यूट ऑफ फंडामेंटल रिसर्च बंबई में वैज्ञानिक थे। इंडियन स्पेस रिसर्च ऑर्गेनाइज़ेशन के स्पेस एप्लीकेशन प्रोग्राम के निदेशक। विश्वविद्यालय अनुदान आयोग के पूर्व चेयरमैन रह चुके हैं।

प्रोफेसर यशपाल ने 4, अगस्त 2000 को होशंगाबाद में होशंगाबाद विज्ञान शिक्षण कार्यक्रम से संबंधित एक शिक्षक सम्मेलन के दौरान विज्ञान के समाज से जुड़ाव और सामाजिक संदर्भों में नवाचारों की भूमिका पर अपने विचार व्यक्त किए थे। यह लेख उनके विचारों का संपादित रूप है।

ज़रा सिर खुजलाइए

पिछली बार आपसे एक सवाल पूछा गया था: सीताराम अपने बाग में लगाने के लिए अमरूद के 25 पौधे लेकर आया। अपने माली गंगाराम से उसने कहा कि ये पौधे 12 कतारों में इस प्रकार लगाओ कि हर कतार में 5 पौधे हों। गंगाराम सोच में पड़ गया कि क्या करें? क्या आप गंगाराम की मदद कर सकते हैं?

पाठकों की ओर से इस सवाल के काफी सही जवाब आए लेकिन जिस बात का डर था वही हुआ। सबसे आसान हल तो खूब सारे आए परन्तु अन्य विकल्पों की कोशिश ज़्यादा नहीं दिखाई दी। इस सवाल के तीन हल यहां दे रहे हैं। शायद इस सवाल के और भी हल होंगे जिन्हें आप खोजने की कोशिश कर सकते हैं।

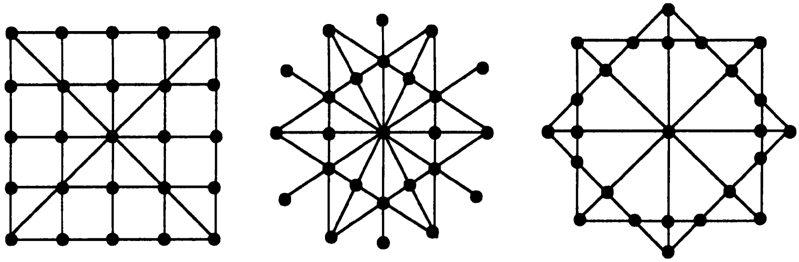

इन तीन जवाबों में से सबसे ज़्यादा हल सबसे बाएं वाले जवाब के थे। बाकी हल भी मिले लेकिन काफी कम। सही जवाब देने वालों के नाम इस प्रकार हैं:

महेश कुमार नाग, कोटगढ़, महासमुंद, छत्तीसगढ़। टीकाराम पटेल, पेंडुरुवां, जांजगीर, छत्तीसगढ़। नरेन्द्र शाह, शिहोर, गुजरात। रामावतार चौधरी, कुडली, जयपुर, राजस्थान। अंजू बघेल एवं सहपाठी, शासकीय हाई स्कूल, सिया, देवास, म. प्र.। देवांशु वत्स, सुपौल, बिहार। मीना, डाबडी, हनुमानगढ़, राजस्थान। अलका कालरा, रमेश नगर, नई दिल्ली। दिनेश कुमार बिनोले, सतवास, देवास। छत्रपाल पटैल, कक्षा 10वीं, आर. एन. ए. स्कूल, पिपरिया, ज़िला होशंगाबाद। हेमंत कुमार खुंटे, लाखागढ़, महासमुंद। दीपक सोंधिया, उमरिया, म. प्र.। चंपालाल कुशवाह, हिरनखेड़ा, होशंगाबाद। देओनीश कुमार डुंगडुंग, दल्ली राजहरा, दुर्ग, छत्तीसगढ़। रविशंकर अजनेरिया, आमूपुरा, होशंगाबाद। शोभा बाजपेई, हरदा। गौतम पांडेय, होशंगाबाद। राजा शब्बीर हुसैन, शुजालपुर। लीना ओझा, शुजालपुर। शतप्रतीक, दयालबाग, आगरा।

कैसे तय होता है पत्तियों का रूप-रंग

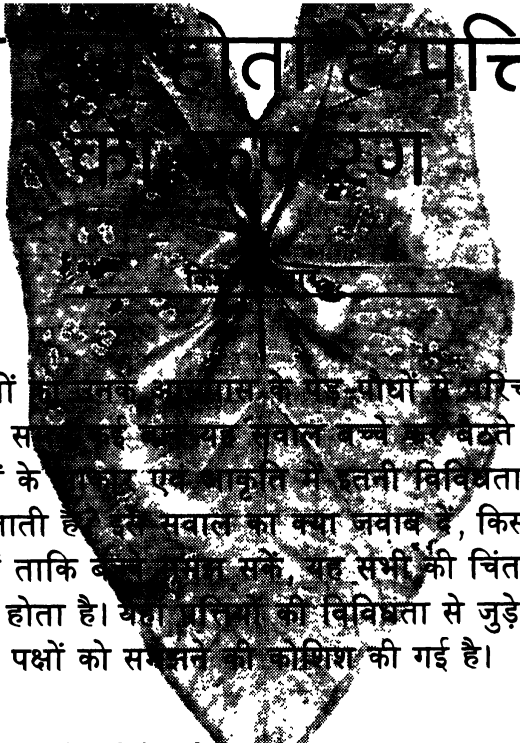

बच्चों को उनके आसपास के पेड़-पौधों से परिचय करवाते समय कई बार यह सवाल बच्चे कर बैठते हैं कि पत्तियों के आकार एवं आकृति में इतनी विविधता क्यों पाई जाती है। इस सवाल का क्या जवाब दें, किस हद तक दें ताकि बच्चे समझ सकें, यह सभी की चिंता का विषय होता है। यहां पत्तियों की विविधता से जुड़े कुछ पक्षों को समझने की कोशिश की गई है।

फूल धारण करने वाले पेड़-पौधों की एक और विशेषता उनकी पत्तियों के आकार और प्रकार में विभिन्नता है। इस विभिन्नता के आनुवंशिक होने से पत्तियों का आकार पौधों के वर्गीकरण में एक महत्वपूर्ण आधार साबित हुआ है – वंश स्तर से कुल स्तर तक। जैसे गुलमोहर, बबूल और इमली के पेड़ों का आकार-प्रकार अलग-अलग है परन्तु उनकी पत्तियों को देखकर कहा जा सकता है कि ये एक ही कुल के सदस्य होना चाहिए, जिसका एक लक्षण संयुक्त पत्तियां हैं।

पत्तियां पौधों का सर्वाधिक प्रमुख हिस्सा हैं। और यही वह भाग है जो पर्यावरणीय बदलावों को सबसे ज़्यादा झेलता है, और इससे प्रभावित होता है। पेड़ों की पत्तियां ही सबसे पहले किसी स्थान विशेष की वायु खराब होने की सूचना देती हैं। विशेषज्ञ पत्तियों पर उभरी इन सूचनाओं को पढ़कर वायु प्रदूषण की स्थिति और प्रदूषकों के प्रकार का पता लगा पाते हैं।

हवा, पानी और धूप का असर भी

इन्हीं पर सबसे ज़्यादा देखा जाता है। यही कारण है कि सबसे ज़्यादा विविधता हमें पत्तियों के आकार, प्रकार और रूप रंग में नज़र आती है। वैसे तो अधिकांश पत्तियां हरी होती हैं पर चितकबरी या अन्य रंगों की पत्तियां भी कम नहीं हैं। क्रोटन और कोलियस की पत्तियां सभी जानते हैं। खैर, पत्ती बाहर से कैसी भी दिखाई दे उसमें कुछ हरा पदार्थ (क्लोरोफिल) तो होता है, क्योंकि यही वह पदार्थ है जो पौधों की पत्तियों को भोजन बनाने में सक्षम बनाता है। यह नहीं, तो भोजन नहीं।

पत्तियों के माप में अंतर भी गज़ब का है – केजुराइना की अति सूक्ष्म पत्तियों से लेकर ताड़ और नारियल की विशालकाय पत्तियों तक। कटे किनारे वाली पत्तियां, या आरीदार पत्तियां, या फिर पूरी पत्ती ही छोटी-छोटी उपपत्तियों में बंटी हुई। केजुराइना की केवल कुछ मिली मीटर छोटी, तो केले की तीन मीटर लंबी और 60 से.मी. चौड़ी। ट्रेवलर्स पाम की पत्तियां एक-दो नहीं पूरी 6 मीटर लंबी होती हैं, जिसे काटने पर एक स्वादिष्ट पेय पदार्थ मिलता है। तभी तो यह नाम मिला – ट्रेवलर्स पाम, यात्रियों की प्यास बुझाने वाला ताड़।

जैसा पर्यावरण वैसा रूप

नम एवं ठंडे और छायादार आवासों के पेड़-पौधों की पत्तियां पतली, बड़ी और अधिकतर पंखनुमा होती हैं; जैसे फर्न और ट्रीफर्न। वहीं तेज़ धूप व पर्याप्त वर्षा वाले स्थानों की पत्तियां चौड़ी, मोटी और कटी-फटी न होकर पूर्ण किनारे वाली होती हैं जैसे बरगद, पीपल, आम और साल या सागौन।

जहां धूप की तेज़ी तो बरकरार हो परन्तु पानी की कमी हो जाए तो पत्तियां अतिसूक्ष्म या सिर्फ कांटों के रूप में होती हैं। रेगिस्तानी इलाकों में ऐसी ही वनस्पतियां मिलती हैं। यानी जैसा पर्यावरण वैसी पत्तियां। पर यह सब कैसे तय होता है कि किस पौधे की पत्तियां कैसी होंगी?

हम जानते हैं कि ये दुनिया भौतिक और जैविक दोनों रूप से बड़ी जटिल है। यहां कई तरह के जीव-जंतु और वनस्पतियां विकसित हुई हैं। इन जीवों में निश्चित अनुवांशिक गुण होते हैं। उन्हीं गुणों के अनुसार उनका आकार-प्रकार व रूप-रंग तय होता है। परन्तु इस अनुवांशिक स्थिरता के अलावा इन जीवों में विकासीय प्रत्यास्थता (डिवेलपमेंटल इलास्टिसिटी) भी पाई जाती है। यह अनुवांशिक रूप से समान जीवों का एक ऐसा गुण है जिसके कारण अनुवांशिक रूप से समान होते हुए भी पर्यावरण के प्रभाव से वे भिन्न हो जाते हैं। ऐसी प्रत्यास्थता जंतुओं की तुलना में पौधों में ज़्यादा होती है। आइए कुछ उदाहरण देखें।

कई बार एक ही पौधे की निचली

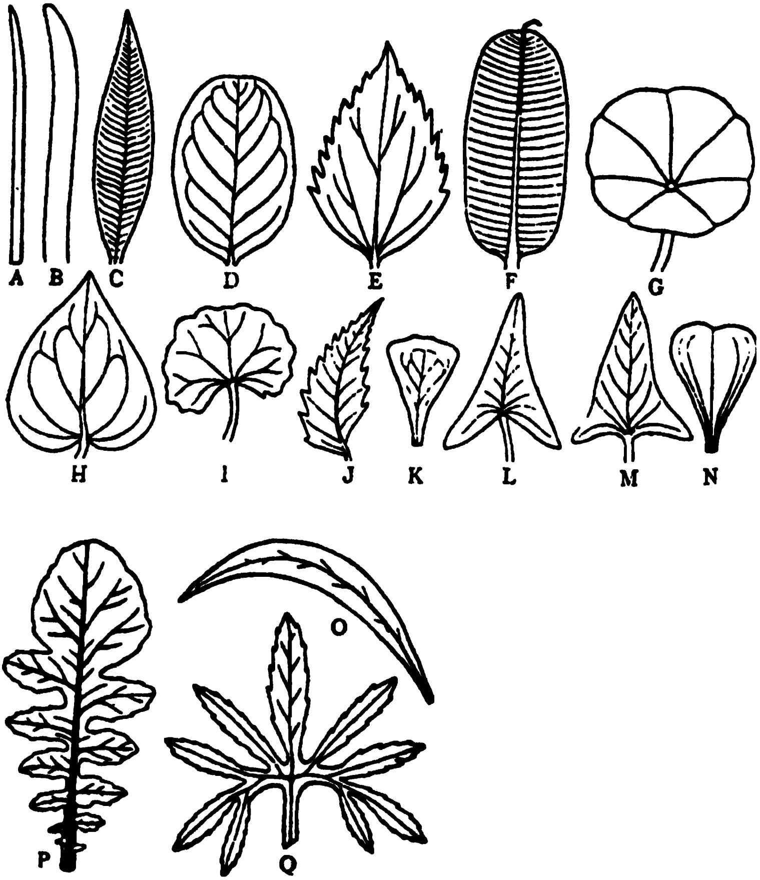

विविध आकार की पत्तियां: ऊपर दी गई पत्तियों को ध्यान से देखिए। शायद इनमें से कई पौधों से आप अच्छी तरह से वाकिफ होंगे। वनस्पति विज्ञान में इन आकारों को दिए गए नामों पर न भी जाएं तो भी इन पत्तियों को मोटे तौर पर सुई जैसी नोकदार, लंबी, लैंस जैसी, गोल, अंडाकार, तिकोनी, दिल के आकार वाली, किडनी के आकार जैसी, हसिए जैसी आदि कई समूहों में बांटा जा सकता है। इन्हें अगर पहचानने की कोशिश करें तो शायद आपको ये पत्तियां – घास, यूकेलिप्ट्स, कनेर, जासोन, केला, पान, नीम, नींबू, बांस, गाजर घास, गेंदा जैसी कई पत्तियों से मेल खाती लग रही होंगी।

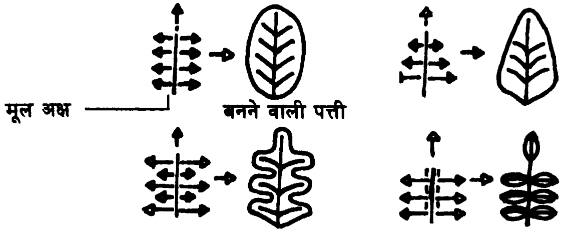

पत्तियों के आकार (शेप) संबंधी पैटर्न का अध्ययन करते समय पत्ती के मूल अक्ष पर कोशिकाओं की वृद्धि और कोशिकाओं के विभाजन पर विशेष रूप से ध्यान दिया जाता है। ऊपर दिए चित्रों में पत्ती के मूल अक्ष और उनसे बनने वाले आकारों को दिखाया गया है।

और ऊपरी पत्तियों में भी इतना अंतर होता है कि यदि उन्हें अलग से तोड़कर आपस में मिला दिया जाए तो यह पता लगाना मुश्किल हो जाता है कि वे एक ही पौधे की पत्तियां हैं, जैसे टिकोमा और लाल पत्ता में। टिकोमा पीले फूल वाली एक शोभादार झाड़ी है – इसमें निचली पत्तियां सरल एवं ऊपरी संयुक्त होती हैं। यह अनुभव हमें उदयपुर में विद्या भवन की एक ट्रेनिंग के दौरान हुआ। ऊपर की पत्तियों मे तो 5 से ज़्यादा पत्रक देखे जा सकते हैं। पत्तियों में यह अंतर पौधे की उम्र से जुड़ा है।

खुली धूप और छायादार स्थानों पर उगने वाले पेड़-पौधे क्रमशः उनके जैविक विकास के दौरान वहां मिलने वाले प्रकाश की मात्रा के अनुसार अनुकूलित हो जाते हैं।

जो पौधे छायादार स्थानों या घने जंगलों में पेड़ों की छाया तले उगते हैं, उनकी पत्तियां पतली और अधिक क्षेत्रफल वाली होती हैं। इन पत्तियों में अपेक्षाकृत ज़्यादा क्लोरोफिल होता है जिससे ये उपलब्ध प्रकाश का अधिकाधिक इस्तेमाल कर सकें। इन पत्तियों में प्रति इकाई वायु रंध्रों की संख्या कम होती है।

इनका क्षेत्रफल अधिक होता है और क्लोरोफिल भी ज़्यादा, अतः प्रकाश की कम मात्रा में भी इनका जीवन यापन चल जाता है। और तो और छाया में उगाए पौधे की पत्तियां ज़्यादा पतली, चौड़ी, आंतरिक रूप से अधिक हवादार और कम वायुछिद्र वाली होती हैं; उसी जाति के उस पौधे की तुलना में जो सीधे प्रकाश में उगाया गया हो।

पत्तियों के आकार-प्रकार पर दिन की लंबाई का भी प्रभाव पड़ता है। खट्टमरा (ब्रायोफिल्म) के पौधे जब छोटे दिन वाली अवस्था में होते हैं यानी उन्हें प्रतिदिन आठ घंटे प्रकाश मिलता है तो इस पौधे की पत्तियां

छोटी, गूदेदार और चिकने किनारे वाली होती हैं। और जब इस पौधे को 16 घंटे प्रकाश मिलता है तो इसकी पत्तियां बड़ी, पतली और कटे-फटे किनारे वाली आती हैं। पत्तियों में यह अंतर आपके पास उगने वाले पत्थर-चट्टा के पौधे में भी देखा जा सकता है। पुरानी नीचे की पत्तियां सरल और गर्मियों के लंबे दिनों में आने वाली पत्तियां संयुक्त होती हैं। गर्मियों में ही इस पर सुंदर घंटी के आकार के फूल खिलते हैं।

एक ही पौधे में अलग-अलग तरह की पत्तियों का पाया जाना पर्ण-विभिन्नता (Heterophyll) कहलाता है। यानी आनुवंशिक रूप से समान होने पर भी इनमें पर्यावरणीय कारणों से भिन्नता आ जाती है। इस तरह के उदाहरण जलीय पौधों में ज़्यादा देखने में आते हैं; जैसे सेजिटेरिया, लिम्नोफिला हिटरोफिला तथा रेननकुलस एक्वाटेलिस।

सेजिटेरिया यानी बाणपत्र की पानी में डूबी पत्तियां तो रिबननुमा होती हैं, परन्तु जैसे ही इसकी लंबाई बढ़ने पर या पानी का तल कम होने से इसकी नई पत्तियां पानी की सतह के ऊपर आती हैं, उनका फलक भाले की नोक जैसा हो जाता है।

पानी के अंदर और पानी के बाहर की पत्तियों को अलग-अलग देखने पर यह कहना नामुमकिन ही है कि ये दोनों पत्तियां एक ही पौधे की हैं। पहले ऐसा माना जाता था कि पत्तियों के कटे-फटे या रिबननुमा होने का कारण उनका पानी में डूबे रहना है। जबकि वास्तविकता यह है कि इसकी वजह तो प्रकाश की मात्रा में परिवर्तन है। पानी के नीचे प्रकाश कम पहुंच पाता है, इसीलिए पत्तियां रिबननुमा हो जाती हैं। देखा गया है कि बाणपत्र को मिट्टी में उगाकर उस पर छाया कर दें तो पानी के बाहर भी इसकी सारी पत्तियां रिबननुमा ही आती हैं।

मतलब यह कि इन पौधों के जीनरूप (जीनोटाइप) में दोनों प्रकार की पत्तियों के संकेत मौजूद होते हैं, यह उनके पर्यावरण पर निर्भर करता है कि पत्ती में कब कौन-सा रूप (फिनोटाइप) प्रदर्शित होगा।

पत्तियों में विभिन्नता का एक उम्दा उदाहरण वंश सायेनिया में देखा जा सकता है। यह लोबेलिऐसी कुल का एक पौधा है जो केवल हवाइयन द्वीप पर मिलता है। इसकी लगभग 60 जातियां हैं जो आपस में एक-दूसरे से काफी भिन्न हैं, विशेषकर पत्तियों की रचना एवं आकार के संदर्भ में। ये अंतर इनके ग्रोथफॉर्म और पत्तियों की बाह्य आकृति से संबंधित हैं।

मसलन सायेनिया लाइनरीफोलिया शुष्क तेज़ धूप वाले स्थानों पर उगता है। इसकी पत्तियां संकरी सुई जैसी

होती हैं। जबकि फर्न (पंख) जैसी पत्तियों वाला सायेनिया नम और छायादार स्थानों पर मिलता है, जैसे सायेनिया एस्प्लेनीफोलिया। उल्लेखनीय है कि एस्पेलेनियम वस्तुतः एक फर्न है जो नम और छायादार स्थानों पर उगती है। ऐसी पर्यावरणीय स्थितियों में ये पतली और बड़ी-बड़ी पंखदार पत्तियां ज़्यादा अच्छी तरह से प्रकाश अवशोषित कर सकती हैं। इस तरह पर्यावरण के प्रति यह इसका अनुकूलन है। इसका विकास संभवतः सायेनिया लोबेटा जैसी जातियों से हुआ है।

सायेनिया जैसे अवलोकनों से

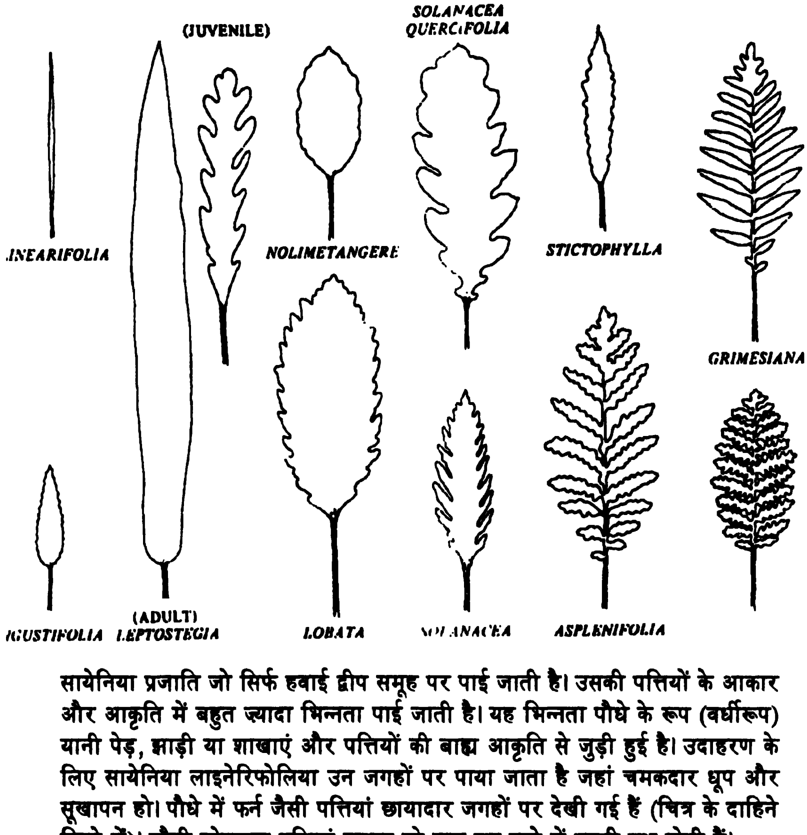

सायेनिया प्रजाति जो सिर्फ हवाई द्वीप समूह पर पाई जाती है। उसकी पत्तियों के आकार और आकृति में बहुत ज़्यादा भिन्नता पाई जाती है। यह भिन्नता पौधे के रूप (वर्धीरूप) यानी पेड़, झाड़ी या शाखाएं और पत्तियों की बाह्य आकृति से जुड़ी हुई है। उदाहरण के लिए सायेनिया लाइनेरिफोलिया उन जगहों पर पाया जाता है जहां चमकदार धूप और सूखापन हो। पौधे में फर्न जैसी पत्तियां छायादार जगहों पर देखी गई हैं (चित्र के दाहिने हिस्से में)। चौड़ी ब्लेडनुमा पत्तियां प्रकाश को प्राप्त कर पाने में खासी दक्ष होती हैं।

1930 तक कई वैज्ञानिक यही मानते थे कि जो भी विभिन्नता पेड़ पौधों के रूप-रंग और आकार में दिखाई देती है, उसके लिए मुख्य रूप से पर्यावरण ही ज़िम्मेदार है, और इसमें आनुवंशिक कारणों का कोई खास लेना देना नहीं है।

विभिन्न आवासों में पौधों की वेराइटी में जो अंतर नज़र आते हैं वे आनुवंशिक रूप से नियंत्रित हैं या पर्यावरणीय स्थितियों द्वारा – इसका ठीक उत्तर पहली बार एक स्वीडिश वनस्पतिशास्त्री गोटे टेरेंसा ने दिया। उन्होंने अपने बगीचे में 31 जातियों की विभिन्न रेसेस (वेराइटी) को उगाया और पाया कि उनमें अंतर का कारण आनुवंशिक है, न कि पर्यावरणीय – कुछ अपवादों को छोड़कर। टेरेंसा ने ऐसे पौधों को, जो विभिन्न आवासीय स्थितियों में उगते हैं, पहली बार इकोटाइप नाम दिया।

वस्तुतः विस्तृत रूप से विभिन्न पर्यावरणीय स्थितियों में फैले एक ही जाति के पौधों में कई सारे परिवर्तन होने से, समयानुसार विकास के चलते और पर्यावरण से एडजस्टमेंट के कारण कई विभिन्नताएं आनुवंशिक रूप से जाति में आ जाती हैं। ऐसी वेराइटी को जिसमें किसी पर्यावरणीय कारक के कारण परिवर्तन हुआ है और जो पर्यावरण बदलने पर भी परिवर्तित नहीं होता – अर्थात अनुवांशिक रूप से उससे जुड़ गया हो – इकोलोजिकल वेरीएन्टस या इकोटाइप कहा जाता है।

पर्यावरण के दबावों के चलते ऐसे अनुवांशिक परिवर्तन जो इन पौधों को उनके पर्यावरण से ज़्यादा सही तालमेल बढ़ाने में सक्षम बनाते हैं, का ज़्यादा प्राकृतिक वरण यानी चुनाव होने से, कालान्तर में नई जाति बन जाती है। वर्तमान में देखने में ऐसा लगता है कि इन पौधों ने अपने को अपने पर्यावरण के अनुसार (किसी विशेष घटक जैसे प्रकाश या पानी की कमी या अधिकता) ढाल लिया है। वस्तुतः जबकि असलियत तो यह है कि इस जाति का विकास हज़ारों लाखों सालों में हुए परिवर्तनों का नतीजा है, जिसमें प्राकृतिक चयन की महती भूमिका है।

खैर, कुछ भी हो आनुवंशिक परिवर्तन स्थिर हो या अस्थिर, पर्यावरण की उसमें भूमिका से इंकार नहीं किया जा सकता। पर्यावरण के महत्व और उसके प्रभावों की इस लेख में की गई चर्चा, इसका प्रमाण नहीं हैं क्या?

कुल मिलाकर पत्तियों का आकार-प्रकार उनके पर्यावरण, रचना और कार्य तथा आनुवंशिकता के आपसी तालमेल पर निर्भर होता है।

किशोर पंवार: इंदौर के होल्कर साइंस कॉलेज में वनस्पति विज्ञान पढ़ाते हैं।

सवालीराम

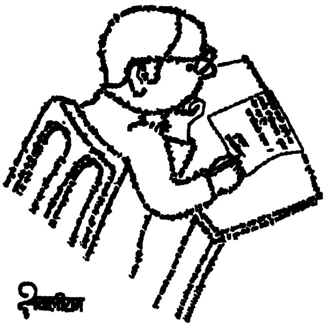

कुछ बातें बालों की

सवाल: मनुष्यों के बालों का रंग सफेद क्यों हो जाता है? बालों के विषय में कुछ जानकारी दीजिए।

— शिल्पा, कृतिका और योगेश, कक्षा सातवीं, होशंगाबाद

जवाब: अक्सर हम में से बहुत से लोग अपने बालों को सजाने संवारने या काटने में काफी वक्त गुज़ारते हैं। ज़रा सोचिए तो चेहरे पर चार चांद लगाने, धूल कण इत्यादि को रोकने के अलावा बाल आखिर करते क्या हैं? कुछ हज़ार साल पहले तक तो बाल हमारे पूर्वजों का शरीर ढांकने के भी काम आते थे।

इस बात से तो आप वाकिफ हैं कि शरीर के अलग-अलग हिस्सों में उगने वाले बालों का आकार-प्रकार अलग-अलग है। जैसे सिर के बाल और पलकों के बालों को छूकर देखिए। इसी तरह अलग-अलग लोगों के सिर के बालों को देखकर यह समझा जा सकता है कि लोगों के बालों में भी भिन्नता होती है। किसी के बाल घुंघराले होते हैं तो किसी-किसी के सीधे। किसी के बाल काले होते हैं तो किसी के भूरे, तो किसी के सुनहरे।

शरीर के अलग-अलग हिस्सों पर

उगने वाले बालों के वृद्धि दर में भी काफी अंतर होता है, जहां पलकों और भौंहों के बालों में वृद्धि नज़र ही नहीं आती, सिर के बालों और दाढ़ी को लगातार हजामत की दरकार होती है। सिर के बाल काफी तेज़ी से बढ़ते हैं – लगभग 12 सेंटीमीटर प्रति वर्ष। मगर हर जगह के बाल एक निश्चित औसतन लम्बाई तक ही बढ़ते हैं जिसके बाद वे झड़ जाते हैं और उनकी जगह नए बाल उग आते हैं।

किसी व्यक्ति के शरीर में बालों का फैलाव कैसा होगा, शरीर में कितने बाल होंगे, बाल घुंघराले होंगे या सीधे, रंग कैसा होगा – ये सब बच्चा जब मां के पेट में होता है तभी से ही तय हो जाता है। ये तमाम गुणधर्म अनुवांशिक हैं। वैसे उम्र बालों पर काफी गहरा असर डालती है। एक निश्चित उम्र के बाद हमारे बाल पतले एवं सफेद होते चले जाते हैं।

अब चलिए बाल की संरचना तथा उनके बनने की प्रक्रिया को समझें। चमड़ी पर पाए जाने वाले बाल को आप ज़मीन पर गड़े खूंटे के रूप में देख सकते हैं। चमड़ी पर बने जिस छिद्रनुमा गड्ढ में बाल पाया जाता उसे पुटक (follicle) कहते हैं। इस पुटक के अंदर धंसी हुई बाल की जड़ तथा जड़ के आसपास की विशेष संरचनाएं मिलकर एक बाल को निश्चित आकार व प्रकार देती है।

बाल की सतह: आमतौर पर नंगी आंखों से देखने पर बाल की सतह चिकनी-सी महसूस होती है लेकिन माइक्रोस्कोप से देखने पर मामला कुछ और ही नज़र आता है। स्केनिंग इलेक्ट्रॉन माइक्रोस्कोप से बाल की सतह देखने पर शल्कनुमा आकृतियां दिखाई देती हैं। इस चित्र में बाल की सतह को 2150 गुना बड़ा करके दिखाया गया है।

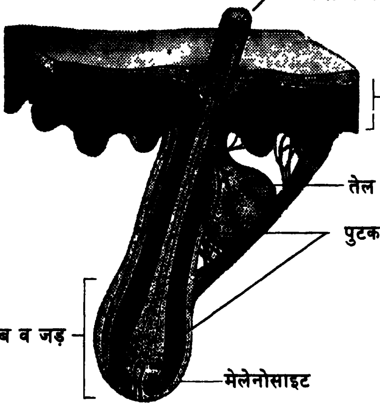

चमड़ी पर बने हुए गड्ढे में धंसा हुआ बाल: चित्र में चमड़ी के बाहर निकले हुए इस बाल की आड़ी काट को देखें तो बीच में एक पतली सी नली और उसके बाहर दो और नलियां नज़र आती हैं। सबसे अंदर वाले हिस्से में रंजक भरी बहुभुज कोशिकाएं एवं खाली जगह यानी हवा होती है। अंदर की इस नली के बाहर वाला हिस्सा बाल में सबसे ज़्यादा जगह घेरता है और उसमें लंबी कोशिकाएं पाई जाती हैं जिनमें काले बालों में मेलेनिन रंजक और सफेद बालों में अधिकतर हवा भरी होती है। बाल का सबसे बाहरी हिस्सा चपटी, पतली शल्कनुमा कोशिकाओं की एक तह के रूप में होता है जिनमें केरेटिन प्रोटीन भरी रहती है।

चमड़ी के जिस गड्ढे में बाल धंसा होता है उस गड्ढे की दीवार प्रमुखतः चमड़ी की एपिडरमिस का हिस्सा ही होता है। नीचे की ओर जहां बाल की जड़ मौजूद रहती है वहां बल्ब जैसा उभार बना होता है। इस एकदम नीचे वाले भाग में ही वे कोशिकाएं पाई जाती हैं जिनसे बाल की कोशिकाएं उत्पन्न होती हैं, और वे मेलेनोसाइट कोशिकाएं भी जो इन कोशिकाओं के बनते ही उनमें रंजक के कण भर देती हैं।

पुटक के ऊपरी हिस्से की ओर तेल ग्रंथियां भी उसमें खुलती हैं और तेल स्रावित करती रहती हैं जिससे बाहर की ओर बढ़ रहे बाल पर तेल का पोलिश भी चढ़ जाता है।

बाल की जड़ के पास वे कोशिकाएं होती हैं जो बाल की कोशिकाओं का निर्माण करती हैं। बाल की ये नव निर्मित कोशिकाएं फिर ऊपर की ओर खिसकती जाती हैं। जैसे ही बाल की एक कोशिका बनती है उसी समय बाल की जड़ के आसपास बाल में रंग भरने वाली मेलेनोसाइट नामक

कोशिकाएं उसमें रंजक के कण भर देती हैं। मेलेनोसाइट का प्रमुख काम है रंजक पदार्थ (मेलेनिन या मेलेनिन के अन्य प्रकार जिनमें कोई और रसायन जैसे गंधक या लोहा हो) बाल में एक विशेष मात्रा में डालना। अगर बाल का अनुवांशिक प्रकार काला हुआ तो रंजक पदार्थ सिर्फ मेलेनिन ही होगा। भूरा बाल हुआ तो मेलेनिन का वह प्रकार भरा जाएगा जिसमें गंधक या लौह-कण मिले होते हैं।

त्वचा की सतह के नीचे तो बाल लगभग जीवित रचना ही होती है, मगर अपनी नली में आगे बढ़ते-बढ़ते तथा सतह तक पहुंचते किन्हीं क्रियाओं के चलते यह मृत हो जाता है; यानी कि पुटक की नली में जैसे-जैसे बाल बढ़ता है उसकी हर कोशिका में (बाहरी घेरे से लेकर अंदर तक) केरेटिन नामक प्रोटीन शामिल होता जाता है। इस प्रोटीन की मात्रा से तय होता है कि बाल कितना कड़क होगा तथा बाल की कोशिकाएं कैसे मृत होती जाएंगी। यूं किसी भी बाल में बाहरी परत सबसे कड़क होती है। कबेलू की तरह एक के ऊपर एक, इस परत की कोशिकाएं जमी होती हैं जिनका खुला हिस्सा ऊपर यानी बाहर की ओर होता है।

बाल जब त्वचा की सतह से निकलते हैं तब पुटक की नली में ही खुलने वाली सेबेशियस (Sebaceous) ग्रंथि से स्रावित होने वाले तेलीय पदार्थ से बालों पर तेल की पॉलिश भी चढ़ जाती है। जहां ये बाल त्वचा की सतह से निकलता है वहां पर भी कई बार यह तेलीय पदार्थ स्रावित होने से, आपने यह महसूस किया होगा कि तेल न डालने पर भी बाल चिकने नज़र आते हैं।

बच्चा जब पेट के अंदर होता है उस वक्त एवं नवजात शिशुओं के बाल पतले व मुलायम होते हैं। जैसे-जैसे बच्चा बढ़ता जाता है उसके बाल मोटे व कड़क होते जाते हैं। बालों की मोटाई कोशिकाओं के घेरों की संख्या में वृद्धि होने से बढ़ती जाती है।

मां के पेट में पलते हुए बच्चे के शरीर पर बालों के पुटकों की संख्या तय हो जाती है। इन पुटकों से बाल निकलने का समय थोड़ा भिन्न ज़रूर हो सकता है। जैसे लड़कों में एक खास उम्र पर दाढ़ी-मूंछ आती है, व सीने पर भी लगभग उसी समय बाल उगने लगते हैं। इन जगहों पर बालों के पुटक तो पहले से ही थे लेकिन निष्क्रिय थे। एक उम्र विशेष पर जाकर वे सक्रिय हो गए।

वयस्क होने तक ये पुटक कहीं-कहीं तो बिल्कुल निष्क्रिय पड़े रहते हैं और कहीं बहुत धीमी दर से क्रियाशील होते हैं। वयस्क अवस्था में शरीर में कुछ रासायनिक परिवर्तनों (कुछ विशेष हार्मोन स्रावित होने से) के कारण ये पुटक क्रियाशील हो जाते हैं।

कुछ गलतफहमियां

बाल काटने से घने होते हैं – यह बात बिलकुल सच नहीं है। बाल जड़ से बढ़ते हैं और काटने पर हम जड़ या पुटक पर कोई प्रभाव नहीं डालते। मगर यदि हम जड़ से बाल को उखाड़ दें तो बाल के पुटक की क्रिया की गति तेज़ होने से बाल जल्दी तो निकल आते हैं मगर वे मोटे नहीं हो पाते।

बाल जड़ से उखड़ जाए तो वहां दोबारा बाल नहीं उगेगा – अगर आप गलती से बाल नोच डालें, तो बाल के सिरे पर गोलाकार सफेद-सा हिस्सा देखकर आपको लगा होगा कि बाल तो जड़ समेत निकल गया, अब वहां और बाल नहीं उगेगा। पर बाल की जड़ तो पुटक में धंसी हुई थी – जड़ समेत बाल निकल भी गया तो पुटक दोबारा बाल बना देगा।

बाल रातों-रात सफेद हो सकते हैं – बालों के पुटक के काम करने का एक निश्चित चक्र है – कुछ समय तक वे बाल बनाते हैं और फिर कुछ समय के लिए सुस्त पड़ जाते हैं। पुटक सुस्त पड़ने पर बाल झड़ जाते हैं तथा फिर क्रियाशील होने से नए बाल बनने लगते हैं।

साल भर में बाल ज़्यादा से ज़्यादा 12 से.मी. ही बढ़ सकते हैं। मेलेनोसाइट बाल की वृद्धि के दौरान अपना कार्य जारी रखते हैं। अगर किन्हीं कारणों से उनकी क्रिया बंद हो जाए – तो बाल में यह असर पहुंचने और दिखने में समय तो लगेगा। हां, जिनके सिरे के कुछ बाल पकने लगे हैं तो अधिकांश पुराने काले बाल पहले झड़ जाएंगे (झड़ने का असर तो पुराने बालों पर पहले होता है) और इसी वजह से सिर में नए सफेद बाल ही दिखने से आपको ऐसा प्रतीत होता है कि रातों-रात आपके बाल पक गए; मगर जनाब बाल झड़ने में समय लगता है और उपरोक्त प्रक्रिया भी कम-से-कम हफ्ते भर में ही संभव हो पाएगी।

उम्र बढ़ने पर इन्हीं पुटक की क्रिया की दर जब फिर से घटने लगती है तो बाल पतले होने एवं झड़ने लगते हैं। यह बात भी पूर्व निश्चित है कि बुढ़ापे की वजह से किस उम्र में किसके बाल पतले होने लगेंगे या झड़ने लगेंगे।

बालों की प्रकृति में अंतर तथा बालों के कुछ और गुणधर्मों की बात करने के पश्चात ही हम यह देखेंगे कि बाल पकते क्यों हैं एवं किन-किन परिस्थितियों में झड़ते हैं।

बाल अगर चपटे हुए तो वे घुंघराले

होंगे एवं अगर बिल्कुल गोल हुए तो सीधे होंगे, यह तो आप किसी घुंघराले एवं किसी सीधे बाल को ध्यान से देखकर या हैंडलैंस की मदद से देखकर पता लगा सकते हैं।

दिखने में इतने पतले और जल्दी से टूटने वाले बाल असल में काफी मजबूत होते हैं। एक बाल पर लगभग 90 ग्राम तक वज़न लटकाया जाए तो वह टूटेगा नहीं। हां, ये काफी लचीले भी होते हैं – ज़रा अपने दो हाथों की उंगलियों के बीच बाल के दो सिरों को कसकर पकड़कर खींचिए और इस बात को खुद महसूस कीजिए।

एक बात जो कम उम्र में हमें काफी असहज प्रतीत होती है, वह है – बालों का पकना यानी सफेद हो जाना। उम्र बढ़ने पर मेलेनोसाइट नामक कोशिकाएं निष्क्रिय होती चली जाती हैं जिसकी वजह से बाल की कोशिका में रंजक पदार्थ नहीं भरा जाता। कई लोग वैसे यह भी शिकायत करते हैं कि कम उम्र में बाल पक रहे हैं, या हमने अमुक बीमारी का इलाज करवाया तो हमारे बाल पकने लगे, या अमुक बीमारी के कारण हमारे बाल पक गए।

बाल पकने की बात शुरू करें तो आपको यह भी बताना ज़रूरी होगा कि अलग-अलग नस्ल के लोगों में बाल पकने की उम्र अलग होगी। वैसे यह गुणधर्म भी अनुवांशिक है। आपके परिवार में जिस उम्र में आपके बाप-दादा के बाल पके होंगे लगभग उसी उम्र से आपके बाल भी पकने लगेंगे।

कुछ बीमारियों तथा शारीरिक बदलावों की वजह से भी बाल पक तथा झड़ सकते हैं – जैसे कुपोषण, हरपिस, टाइफोइड, मलेरिया, डायबीटीज़, प्रसव के बाद इत्यादि। कुपोषण से भी बाल पक सकते हैं या उनका रंग भूरा हो सकता है। मगर यह निश्चित नहीं है कि अलग-अलग लोगों में ये बीमारियां बालों पर कितना असर करेंगी। अक्सर बाल झड़ तो जाते हैं मगर उपरोक्त में से किसी-किसी बीमारी में ही, जैसे डायबीटीज़ में, बालों का रंग सफेद होने की प्रक्रिया तेज़ हो जाती है।

कैंसर के रोगी के इलाज के दौरान काफी बाल झड़ जाते हैं। इसकी वजह यही है कि बाल के पुटक रसायनों तथा विकिरण के असर से निष्क्रिय हो जाते हैं। मगर बाद में दोबारा इन्हें सक्रिय किया जा सकता है।

इस बार सवालीराम का सवाल पृष्ठ 42 पर देखिए।

इतिहास का अध्ययन-अध्यापन एक विचार

आर. एस. राजपूत

आज देश में स्कूली पाठ्यक्रम को लेकर एक बहस छिड़ी है। खासकर इस बात को लेकर कि यह किन मूल्यों पर आधारित हो? पाठ्यक्रम में राष्ट्रीयता, धार्मिकता आदि भावनाओं की क्या जगह है? निश्चित ही तमाम शिक्षक व पालक इस विषय पर सोचते होंगे। इन्हें व्यक्त करना और इन पर बहस करना आज बहुत ज़रूरी हो गया है।

यहां हम सेमरी हरचंद के एक शिक्षक आर. एस. राजपूत का एक लेख प्रस्तुत कर रहे हैं – इतिहास शिक्षण के उद्देश्यों पर। चूंकि उन्होंने अपनी सोच का आधार अखंड मानवीयता को बनाया है यह लेख हमें मौलिक स्तर पर सोचने पर मजबूर करता है। हम आशा करते हैं कि ज़्यादा-से-ज़्यादा शिक्षक इस लेख पर अपनी प्रतिक्रिया लिख भेजेंगे।

आज विश्व का मानव उन्नति के उस स्थान पर पहुंच चुका है जहां केवल दो रास्ते हैं पहला सही शिक्षा प्राप्त कर उन्नति के पथ पर आगे बढ़ना तथा दूसरा सारी सभ्यता और मनुष्य जाति का संपूर्ण विनाश का मार्ग।

हम जानते हैं वर्तमान समय में शिक्षा 'व्यक्तिगत, राष्ट्रीय एवं राजनैतिक संघर्ष' की धुरी बन गई है। इसलिए वह सामाजिक राजनैतिक उथल-पुथल से प्रभावित होती है।

गलत शिक्षा अथवा गलत सिद्धांतों पर दी गई शिक्षा के परिणाम बड़े गलत हुए हैं। मुझे मशहूर शायर की कुछ पंक्तियां याद आ रही हैं जो हमारे देश की स्थिति को बड़े अच्छे ढंग से व्यक्त करती हैं:

हमें एक घर बनाना था
ये हम क्या बना बैठे।
कहीं मंदिर बना बैठे
कहीं मस्जिद बना बैठे
परिंदों के यहां फिरका
परस्ती क्यों नहीं होती
कभी मंदिर पे जा बैठे
कभी मस्जिद पे जा बैठे।

विश्व बंधुता का आदर्श हमसे कोसो

दूर दिखाई पड़ रहा है। उसके स्थान पर आतंकवाद की गतिविधियों से भारत ही नहीं पूरा विश्व किस तरह त्रस्त है हम बखूबी जानते हैं। यह सब इतिहास के गलत ढंग से पढ़ाए जाने तथा गलत समय में पढ़ाए जाने का परिणाम है।

वर्तमान युग में विज्ञान तथा औद्योगिक प्रगति इसी प्रकार होती रहेगी, परन्तु यह तथ्य सभी राष्ट्रों के शिक्षा विदों को आवश्यक रूप से समझ में आ चुका होगा कि अब विश्व के सभी राष्ट्र एक साथ बैठकर स्कूल तथा विश्व विद्यालय के पाठ्यक्रम (सभी विषयों) विशेषकर इतिहास के पाठ्यक्रम का अंतर्राष्टीयकरण कर डालें। अब देश में जाति के स्थान पर बालकों को उच्च नैतिक आदर्श व मानव मूल्यों की शिक्षा प्राप्त हो जिसमें 'सत्य' नैतिक आदर्श पर आधारित हों। परन्तु इसके लिए हमें बहुत बड़े त्याग की ज़रूरत होगी।

सभी राष्ट्रों एवं जातियों को अपनी वीर-पूजा की कहानियों को समाप्त करना होगा। जाति, धर्म, राष्ट्र के अहंकार का त्याग करना होगा। इसमें संदेह नहीं कि यह उन लोगों के प्रति अकृतज्ञता होगी जिन्होंने अपने देश-जाति, धर्म के लिए बलिदान किए।

परन्तु यदि यह संभव हो सका तो वह दिन ज़रूर आएगा जब विश्व का प्रत्येक बालक एवं नौजवान एक समान मानवता का सच्चा इतिहास पढ़ेगा, दुनिया वास्तविक शांति पाएगी। विभिन्न देशों में पढ़ाए जाने वाला इतिहास अपनी जाति, धर्म, राष्ट्र को महान बताते हुए रचा गया है जिससे बच्चे स्वयं को श्रेष्ठ और अन्य को 'हेय' समझते हैं। चाहे इतिहास हो या अन्य विषय, जो उच्च मानवता के आदर्श को प्राप्त करने में सहायक न हो उसे शिक्षा नहीं कह सकते। अतः इतिहास का विषय बालकों को 15 वर्ष की उम्र के पश्चात पढ़ाया जाए तो कोई हर्ज़ नहीं हैं।

मोहम्मद, ईसा, बुद्ध, कृष्ण,
कबीर, गांधी सबको पढ़ डालो।
सब धर्मों के सुविचारों
के गजरे गढ़ डालो।
मत बनवाओ मंदिर,
मस्जिद, गिरजे, गुरूद्वारे।
इनसे नफरत का ज़हर
ही फैला जग में।
सारे दीन-दुखियों की सेवा करो।
मदर टेरेसा कह रही,
मिले दिल से दिल की बूंद,
प्यार की गंगा बह रही।
इस तरह दिलों को जोड़ने का
नुस्खा सरे बाज़ार बांटता हूं।
जी हां हुजूर मैं प्यार बांटता हूं।

आर. एस. राजपूतः संस्कार विद्यालय, सेमरी हरचंद, जिला होशंगाबाद में पढ़ाते हैं।

मेरे कुछ अवलोकन

हाथों से घिसकर बनाए गए लैंस से बनाया गया था माइक्रोस्कोप

एंटोन वॉन ल्यूवेनहॉक

एंटोन वॉन ल्यूवेनहॉक शायद सत्रहवीं शताब्दी केसूक्ष्मदर्शी बनाने और उनका कुशल इस्तेमाल करने वालों में सबसे विलक्षण था। काफी मेहनत लगाकर हाथ से घिसकर बनाए गए लैन्सों के ज़रिए उसने अपने माइक्रोस्कोप विकसित किए। उसके लैन्स इतनी बारीकी और कुशलता से बनाए हुए थे कि वो उनसे लगभग 200 गुना आवर्धन (Magnification) हासिल कर पाया। उन लैन्सों की सहायता से उसने तरह-तरह के पदार्थों का अध्ययन किया – गड्ढे का पानी, दांत की खुरचन, खून की कोशिकाएं, पेशियों के तंतु और शुक्राणु। ल्यूवेनहॉक को जीवाणु विज्ञान (माइक्रोबायोलॉजी) का प्रणेता कहा जाता है क्योंकि वह पहला व्यक्ति था जिसने अपने शोध के लिखित रिकॉर्ड रखे।

1683 में उसने ऐसी रचनाओं का वर्णन किया जो बेक्टीरिया ही हो सकते थे। उसके बाद सौ साल तक उन्हें फिर से नहीं देखा जा सका। यहां दिए गए हिस्सों में ल्यूवेनहॉक ने इन छोटे प्राणियों के 1675 में लिए अवलोकनों का वर्णन किया है – इतने छोटे जीव कि वे नंगी आंखों से दिखाई नहीं देते, पर फिर भी उनमें एक हाथी या एक भीमकाय देवदार के पेड़ जितना ही जीवन मौजूद है।

हालांकि ल्यूवेनहॉक को एक सिद्धांतकार के बजाए प्रमुखत: एक अवलोकनकर्ता ही माना जाता है। उस समय प्रचलित विश्वास था कि मृत पदार्थ से भी जीवन पैदा हो सकता है – परन्तु ल्यूवेनहॉक ने इस मान्यता का विरोध किया; और वैज्ञानिक विचारधारा के विकास में यह ल्यूवेनहॉक का एक प्रमुख योगदान था। अब हम उनके अवलोकनों और नोट्स पर गौर फरमाएंगे जो 1677 में प्रकाशित किए गए थे।

कुछ अवलोकन

1675 में मैंने बारिश के पानी में अत्यन्त सूक्ष्म जीवित प्राणियों की खोज की – ऐसा बारिश का पानी जो कुछ दिन तक, अंदर से नीले रंग से पॉलिश किए हुए मिट्टी के बर्तन में रखा गया था। इस वजह से मैंने उस पानी को बहुत ध्यान से देखा, विशेषतौर पर उन सूक्ष्म जीवों को – जो मुझे एम. स्वामरडेम द्वारा उससे पहले देखे गए (दर्शाए गए) जीवों से दस हज़ार गुना छोटे लग रहे थे। एम. स्वामरडेम ने इन्हें पानी के पिस्सू या पानी की जूं कहा था, जिन्हें पानी में बिना किसी उपकरण के नंगी आंखों द्वारा देखा जा सकता है।

पहली तरह का जीव जिसे मैंने कई बार देखा वो 5, 6, 7 या 8 गोलीनुमा रचनाओं का बना हुआ दिख रहा था। कोई ऐसा खोल या झिल्ली भी नहीं नज़र आ रही थी जो उन्हें आपस में बांधे रखती हो या उन्हें अपने में समेटे रख रही हो। जब ये कीटाणु या जीवित परमाणु चलते थे (हलन-चलन करते थे), तो वे दो छोटे

सींगनुमा अंग आगे को बढ़ाते थे, जो लगातार हिलते रहते थे। इन दोनों सींगों के बीच की जगह चपटी-सी थी, जबकि शेष शरीर वक्राकार था, जो अंत की ओर थोड़ी नुकीला हो जाता था। इस छोर की ओर पूंछ थी जो शरीर से लगभग चार गुना लंबी थी, और मेरे माइक्रोस्कोप के हिसाब से मकड़ी के जाले के धागे जितनी मोटी थी। और इस पूंछ के अंत में एक गोला-सा था, लगभग उसी साइज़ का जिससे इस जीव का शरीर बना हुआ था। ये छोटे प्राणी अगर किसी तंतु या धागे पर जा पहुंचते, या किसी ऐसे अन्य कण पर, तो वे इसमें फंस जाते थे और अपने शरीर को एक वक्र में खींचकर उससे अपनी पूंछ छुड़ाने की कोशिश करते। अपने आप को फैलाने और सिकोड़ने की प्रक्रिया कुछ समय तक चलती रहती; और मैंने रेत के कण में ऐसे कई सैंकड़ों बेचारे जीवों को कुछ तंतुओं में आपस में फंसे देखा है।

मैंने एक अन्य तरह के, अंडाकार आकार के जीव की भी शोध की और मुझे ऐसा लगा मानो कि उनका सिर तीखे सिरे की तरफ हो। ये पहले वालों की अपेक्षा थोड़े -से बड़े थे। इनके शरीर का नीचे का हिस्सा चपटा था और उस पर बहुत से पतले-पतले पैर थे, जो बहुत तेज़ी से हलन-चलन करते थे। शरीर का ऊपरी हिस्सा वक्राकार था और उसमें 8, 10 या 12 गोले थे, जहां भी वे गोले स्पष्टतौर पर दिख रहे थे। ये छोटे जीव कभी-कभी अपनी आकृति बदलकर एकदम गोला बना लेते थे, खासतौर पर जब वे किसी सूखी जगह पर आ जाते थे। उनका शरीर अत्यन्त लचीला था; क्योंकि जब भी उनका शरीर किसी भी छोटे-से-छोटे तंतु या धागे से टकराता, उनका शरीर मुड़ जाता, और फिर से धक्का-सा खाकर वापस आ जाता।

जैसे ही मैंने उन्हें सूखी जगह पर रखा, मैंने देखा कि अपने आप को गोले में बदलते वक्त, वे अपने शरीर को पिरामिड के रूप में उठा लेते जिसका ऊपरी बिन्दु बीच में होता। फिर इस तरह कुछ देर पड़े रहने के बाद वे फट जाते हैं, और ऐसी स्थिति में छोट-छोटे गोले अस्पष्ट से दिख रहे थे, इसलिए मैं उस झिल्ली का पता नहीं लगा पाया, जिसमें यकीनन ये गोले कैद रहे होंगे। और फटने के वक्त, जब यह ज़िंदा था उसकी तुलना में, ज़्यादा गोले दिखाई दिए।

मुझे एक तीसरे प्रकार का जीव भी दिखा जो जितना चौड़ा था उससे दुगना लंबा था, और मुझे पहले जीव से आठ गुना छोटा दिख रहा था; फिर भी मुझे लगा कि उसके छोटे-छोटे पैर हैं, जिनकी मदद से ये गोले

में और सीधी रेखा में बहुत तेज़ी से चल रहे थे।

एक चौथा भी था जो इतना छोटा था कि मैं उसकी आकृति भी नहीं बूझ पाया। ये एक बड़ी जूं की आंख से हज़ार गुना छोटे थे। ये अब तक दिखे सब की तुलना में ज़्यादा चपल थे। मैंने कई बार उन्हें एकदम स्थिर अवस्था में देखा है जैसे कि कोई बिन्दु हो, और फिर अत्यंत फुर्ती से अपने आपको घुमाने लगते हैं जैसे हम लट्टू को घूमता हुआ देखते हैं। (घूमते वक्त) उनकी परिधि एक छोटे रेत के कण से ज़्यादा नहीं होती और फिर ये शरीर को सीधा आगे की तरफ बढ़ा लेते हैं, और फिर धीरे-धीरे झुकी हुई सी मुद्रा में लेट जाते हैं। मैंने और भी कई तरह के प्राणी देखे; वे पहले वाले की तरह, आमतौर पर इतने नाजुक होते

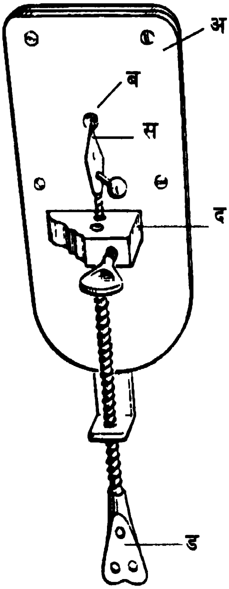

चित्र: एक

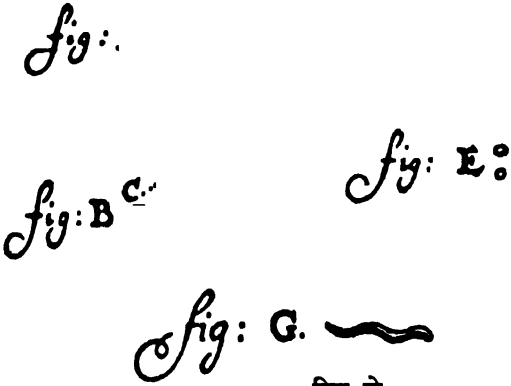

चित्र: दो

माइक्रोस्कोप और सूक्ष्मजीव: चित्र: एक ल्यूवेनहॉक द्वारा बनाया गए एक माइक्रोस्कोप का रेखाचित्र है। इसमें 'अ' माइक्रोस्कोप की फ्रेम है। 'ब' माइक्रोस्कोप का लैंस है। 'स' स्लाइड फंसाने के लिए क्लैंप है। 'द' फोकसिंग के लिए स्क्रू है। 'ड' माइक्रोस्कोप का हत्था है जिससे माइक्रोस्कोप को पकड़ा जाता है। यहां माइक्रोस्कोप का सामने वाला हिस्सा दिखाया गया है। माइक्रोस्कोप का इस्तेमाल करने के लिए पिछला हिस्सा आंखों के पास रखकर लैंस से देखा जाता था।

चित्र: दो में ल्यूवेनहॉक द्वारा देखे गए सूक्ष्म जीवों के रेखाचित्र हैं जिन्हें उसने अपने शोधपत्र में बनाया था।

थे कि पानी को छूते ही फट जाते।

26 मई को तेज़ बारिश हुई। बारिश कम होने पर मैंने घर की छत से बहकर आया बारिश का थोड़ा-सा पानी साफ गिलास में इकट्ठा कर लिया। ऐसा करने से पहले गिलास को दो-तीर बार धो लिया था। और इसमें मैंने कुछ बहुत ही छोटे जीवित प्राणी देखे और उन्हें देखकर मैंने सोचा कि शायद वे छत की नालियों में पहले से पड़े पानी में पैदा हुए होंगे।

कुछ दिन बाद, साफ पानी में, मुझे ऐसे ही और जीव दिखाई दिए; और कुछ जो कि इनसे थोड़े से बड़े थे। मेरा ख्याल है कि ऐसे हज़ारों छोटे जीव मिलकर भी रेत के एक कण की बराबरी नहीं कर सकते। और अगर उनकी तुलना पनीर (चीज़) के कीड़े से करें जिसे कि नंगी आंखों से देखा जा सकता है तो उनका अनुपात ऐसा होगा जैसे कि एक मधुमक्खी और घोड़े में होता है क्योंकि एक ऐसे छोटे जीव की परिधि पनीर (चीज़) के कीड़े के एक रोएं की मोटाई के बराबर भी नहीं होती।

थोड़े से ऐसे बारिश के पानी में, जिसे कुछ दिन तक हवा में खुला रखा गया था, मुझे एक बूंद पानी में हज़ारों जीव दिखे, जो कि अब तक दिखने वाले जीवों में सबसे छोटे थे।

और कुछ समय बाद मैंने अब तक दिखे जीवों के अलावा, ऐसे जीव भी देखे जो आठ गुना बड़े थे व आकार में गोलाकार थे; बहुत छोटे वाले जीव तो पानी में धीरे-धीरे तैर रहे थे, परन्तु ये बड़े वाले फुर्ती से इधर-उधर जा रहे थे जैसे कि हवा में मच्छर उड़ते हैं, और ऐसा करते हुए अचानक गिर पड़ रहे थे।

मेइज़ नदी के पानी में मैंने अलग-अलग तरह और रंगों के बहुत छोटे जीव देखे। ये जीव इतने छोटे थे कि मैं मुश्किल से उनकी आकृति देख पाया; परन्तु बारिश में पाए गए जीवों की तुलना में इनकी संख्या काफी कम थी। शरद ऋतु में अत्यन्त ठंडे कुंए के पानी में, मुझे बहुत से छोटे जीवित प्राणी मिले जो एकदम पारदर्शी थे और ये, मैंने अब तक जो सबसे छोटे जीव देखे थे, उनसे थोड़े से ही बड़े थे।

समुद्र के पानी में मैंने सबसे पहले एक छोटा काला-सा जीव देखा जो दो गोलों का बना हुआ लग रहा था। इस जीव की चाल विचित्र थी– जैसे कि सफेद कागज़ पर पिस्सू छलांग लगा रहा हो, इसलिए इसे पानी का पिस्सू कहा जा सकता है। परन्तु यह डॉ. स्वामरडेम ने जिस जीव को पानी का पिस्सू कहा था उसकी आंख से भी छोटा था। मैंने उस पानी में रंगहीन/पारदर्शी छोटे जीव भी पाए जो पिछले वालों जितने ही बड़े थे परन्तु अंडाकार

थे और उनकी चाल सर्पीली थी। मेरा ध्यान तीसरी तरह के जीवों की तरफ भी गया जो बहुत धीरे चल रहे थे; जिनका रंग चूहे जैसा था और अंडाकार सिरे की तरफ पारदर्शी थे; और जिनके सिरे से पहले, शरीर के ऊपर के भाग की तरफ एक तीक्ष्ण कांटे जैसा निकला हुआ था। ये वाले जीव थोड़े से बड़े थे। चौथी तरह के जीव इन अंडाकार जीवों से भी थोड़े लंबे थे। परन्तु प्रत्येक जीव की संख्या थोड़ी-सी ही थी।

इसी पानी को कुछ दिन बाद दोबारा देखने पर, मुझे एक जीव दिखा था वहां 100 दिखाई दिए; परन्तु इनकी आकृति अलग थी, और कम के बजाए ये ज़्यादा पारदर्शी थे। इनकी आकृति अंडाकार थी, सिर्फ अंतर इतना ही था कि अंडाकार के सिरे ज़्यादा नुकीले थे। हालांकि वे रेत के एक कण से हज़ारों गुना छोटे थे, फिर भी उन्हें जैसे ही पानी में से निकालकर किसी सूखी जगह पर रखा जाता वे फटकर टुकड़ों में बंट जाते, और तीन-चार छोटे-छोटे गोलों में बिखर जाते; और कुछ पनीला पदार्थ दिखाई देता – इनके अलावा और कोई अंग दिखाई नहीं देते थे।

एक तिहाई औंस काली मिर्च पानी में डालकर, मैंने उसे तीन हफ्ते तक पानी में रहने दिया; इस दौरान मैंने उसमें दो बार बर्फ का पानी मिलाया था क्योंकि शुरुआती पानी का ज़्यादातर हिस्सा उड़ गया था। मुझे यह देखकर काफी हैरानी हुई कि उसमें बहुत से, तरह-तरह के छोटे जीव थे। इनमें से कुछ जितने चौड़े थे उससे तीन-चार गुना लंबे थे; पर उनकी कुल मोटाई जूं के रोएं जितनी भी नहीं थी। उनकी चाल काफी आकर्षक थी, अक्सर गिरते-पड़ते एक तरफ लुढ़क जाते। और जब उनके पास का पानी बह जाने दिया जाता, वे लट्टू की तरह घूमने लगते – पहले उनका शरीर अंडाकार शक्ल अख्तियार कर लेता और बाद में, जब घूमना बंद कर देता तो वापस पहले जितना लंबा हो जाता। इस पानी में जो दूसरा जीव देखने को मिला, वह एकदम अंडाकार था, और उसकी चाल भी पहले वाले की तरह आकर्षक और चपल थी; और इनकी संख्या कहीं ज़्यादा थी। एक तीसरी तरह का जीव भी था जिसकी संख्या पहले दोनों से भी अधिक थी, और इसकी पूंछ वैसी ही थी जिसका अवलोकन मैंने पहले बारिश के पानी में किया था। चौथी तरह के जीव, जो इन तीनों के बीच घूम रहे थे अत्यंत छोटे थे, और मेरा अंदाज़ा था कि अगर वैसे 100 जीव एक दूसरे से सटाकर रख दिए जाएं तो उनकी लंबाई रेत के एक कण के बराबर भी नहीं होती; और इस अंदाज़ के

मुताबिक ऐसे 10,00,000 जीव मिलकर भी एक रेत के कण जितना आकार नहीं ले सकते थे।

पांचवीं तरह का एक और जीव दिखाई दिया जो पिछले जितना ही मोटा परन्तु उससे दुगनी लंबाई लिए था।

ऐसे बर्फ के पानी (स्नो वॉटर) में जिसे एक कांच की बोतल में अच्छी तरह से ढक्कन लगाकर बंद करके तीन साल तक रखा गया था, मुझे कोई भी जीवित प्राणी नहीं दिखाई दिया। इसमें से कुछ पानी को चीनी मिट्टी के कप में डालकर उसमें आधा औंस काली मिर्च मिलाकर रखने पर, कुछ दिन बाद मुझे उसमें कुछ जीव दिखे. – अत्यंत छोटे वाले जिनकी लंबाई मुझे चौड़ाई से दुगनी लग रही थी, परन्तु वे अत्यंत धीरे चल रहे थे और अक्सर गोल-गोल (वक्र में) घूम रहे थे। मुझे बहुत सारे अंडाकार जीव भी दिखाई दिए जिनकी संख्या एक बूंद में 6000 या 8000 थी।

एंटोन वॉन ल्यूवेनहॉक (1632-1723): डच बायोलॉजिस्ट एवं माइक्रोस्कोपिस्ट। उसने बतौर रुचि कांच को घिसकर लैंस बनाने और उनसे माइक्रोस्कोप बनाने का काम शुरू किया था। ल्यूवेनहॉक ने जीवन भर में 400 से ज्यादा माइक्रोस्कोप बनाए जिनमें से कुछ अभी भी चालू हालत में हैं। उसके द्वारा बनाए गए सबसे शक्तिशाली सूक्ष्मदर्शी से लगभग 275 गुना आवर्धन प्राप्त किया जा सका है। ल्यूवेनहॉक ने माइक्रोस्कोप की मदद से प्रोटोज़ोआ को देखा था। साथ-साथ उसने पौधों और कीटों की संरचनाओं का भी माइक्रोस्कोप से अध्ययन किया था।

मूल शोध-पत्र एंटोन वॉन ल्यूवेनहॉक *द्वारा लिखित 'बारिश के पानी, कुएं, समुद्र, बर्फ (स्नो) के पानी और काली मिर्च वाले पानी में पाए गए प्राणियों के अवलोकन' फिलोसॉफिकल ट्रान्सेक्शन्स ऑफ रॉयल सोसायटी के खंड 12, पृष्ठ 374–377 में सन 1677 (लंदन) में प्रकाशित। संदर्भ पत्रिका में प्रकाशित यह लेख 'रियल्म ऑफ साइंस' में प्रकाशित लेख का अनुवाद है।*
हिन्दी अनुवाद: राजेश खिंदरी।

ह म स फ र

सत्यजीत रे

बारिन भौमिक 'डी' कम्पाटमट में चढ़ा और उसने अपनी अटैची सीट के नीचे घुसा दी। सफर में इसे खोलने की ज़रूरत नहीं पड़ेगी। लेकिन दूसरा झोला कहीं पास में रखना ठीक रहेगा। उसमें कुछ ज़रूरी चीज़ें – कंघी, दांत का ब्रुश, दाढ़ी बनाने का सामान, जेम्स हैडली चेज़ की एक किताब और कुछ छुट-पुट चीज़ें जिनमें उसके गले की दवाई भी थी। अगर इस ठण्डे, वातानुकूलित डिब्बे के लंबे सफर से गला बैठ गया, तो वह कल

गा नहीं पाएगा। तपाक से उसने एक गोली अपने मुंह में डाली और अपना झोला खिड़की के पास की मेज़ पर रख दिया।

यह दिल्ली जाने वाली ट्रेन थी। गाड़ी छूटने में सिर्फ सात मिनट बचे थे; पर अन्य यात्रियों का नामोनिशां भी नहीं था। क्या वह सारा रास्ता इसी तरह अकेले सफर कर पाएगा? यह तो ऐशो-आराम की हद होगी। इस ख्याल से ही खुश होकर वो एक गीत गुनगुनाने लगा।

उसने झांककर खिड़की से बाहर प्लेटफॉर्म पर खड़ी भीड़ को देखा। दो आदमी बार-बार उसकी ओर देख रहे थे। शायद वे उसे पहचान गए थे। यह कोई नई बात नहीं थी, अब लोग उसे अक्सर पहचान लेते थे। न सिर्फ उसकी आवाज़ पहचानी जाती थी, बल्कि उसकी शक्ल भी। उसे एक महीने में कम-से-कम आधा दर्जन बार शो करने पड़ते थे। आज रात बारिन भौमिक को सुनिएगा – वो कुछ नज़रूल के लिखे और कुछ एकदम नए, दोनों ही तरह के गीत गाने वाला था। पैसा और नाम, दोनों की बारिन भौमिक के पास कोई कमी नहीं थी।

लेकिन यह सिर्फ पिछले पांच सालों में हुआ था। उससे पहले उसे काफी संघर्ष करना पड़ा। एक अच्छा गायक होना ही काफी नहीं है बल्कि सही अवसरों और अन्य लोगों की मदद की भी ज़रूरत होती है। यह 1963 में हुआ जब भोला दा – भोला बैनर्जी ने उसे उनीश पल्ली के पूजा पंडाल में गाने के लिए आमंत्रित किया। उस दिन से बारिन भौमिक ने पीछे मुड़कर नहीं देखा था।

बल्कि अब वह बंगाल एसोसिएशन के निमंत्रण पर उनके जुबली कार्यक्रम में गाने के लिए दिल्ली जा रहा था। वो लोग उसकी यात्रा के लिए फर्स्ट क्लास का भाड़ा दे रहे थे और दिल्ली में उसके रहने की व्यवस्था भी करने का वायदा किया था। वो दिल्ली में कुछ दिन बिताना चाहता था। वहां से फिर आगरा, फतेहपुर सीकरी और फिर एक हफ्ते बाद वापस कलकत्ता। उसके बाद पूजा का समय आ जाएगा और ज़िंदगी बेहद व्यस्त हो जाएगी।

"खाना खाएंगे, साहब. . . ?" दरवाज़े से आवाज़ आई।

"क्या है खाने में?"

"आप मांसाहारी हैं, न? आप भारतीय और अंग्रेज़ी खाने में से चुन सकते हैं। अगर आप भारतीय चाहते हैं, तो हमारे पास. . . ."

बारिन ने खाने का बताकर अभी अपनी 'थ्री कासल' सिगरेट जलाई ही थी कि एक और आदमी वहां आकर बैठ गया। उसी समय ट्रेन भी चल पड़ी।

बारिन ने उसे देखा। वह कुछ पहचाना-सा लग रहा था। कहीं कोई परिचित तो नहीं था? बारिन थोड़ा मुस्कुराया, पर उसकी मुस्कुराहट तुरंत गायब हो गई। उस आदमी की तरफ से कोई जवाब नहीं था। मुझे कहीं गलतफहमी तो नहीं हो गई? हे राम, कितनी अटपटी स्थिति होगी। मुझे क्या ज़रूरत थी बेवकूफों की तरह मुस्कुराने की? ऐसा उसके साथ एक बार पहले भी हुआ था।

उसने एक आदमी की पीठ पर ज़ोर से धोंस जमाया और 'हेलो! त्रिदीब दा! कैसे हो?' कहा था। फिर पता चला कि यह त्रिदीब दा है ही नहीं। इस किस्से ने उसे कई दिन तक परेशान किया था। भगवान भी हमें शर्मिंदा करने के लिए क्या-क्या जाल बिछाता है।

बारिन भौमिक ने उस आदमी को फिर से देखा। उसने अपनी चप्पल उतारकर पांव पसार लिए थे, और अब एक पत्रिका के पन्ने पलट रहा था। एक बार फिर बारिन को लगा कि उसने इस आदमी को पहले कहीं देखा ज़रूर है और उसके साथ काफी समय भी बिताया है। लेकिन कब? और कहां? इस आदमी की मोटी भौवें थीं, पतली-सी मूंछ थी, चमकते हुए बाल, और माथे के बीचों-बीच एक मस्सा। हां, इस चेहरे को वह जानता था। क्या इससे तब मुलाकात हुई थी जब वह सेंट्रल टेलीग्राफ में काम करता था, लेकिन यह परिचय एक-तरफा तो नहीं हो सकता? उसके साथी ने तो पहचानने का कोई संकेत नहीं दिया था।

"आपका खाना, साहब?" फिर वही कंडक्टर आया। वो एक मोटा-तगड़ा, खुशमिज़ाज बंदा था।

उस आदमी ने कहा, "खाने का बाद में सोचेंगे। पहले एक प्याली चाय मिलेगी?"

"ज़रूर, क्यों नहीं।"

"केवल चाय। मुझे काली चाय ही पसंद है।"

बस! अब तो बारिन भौमिक को एकदम अजीब-सा लगने लगा। ऐसा लग रहा था मानों दिल को पंख लग गए हों और वो उड़कर फेफड़ों में आ अटका हो। न सिर्फ उस आदमी की आवाज़, पर जो वो खास ज़ोर देकर कह रहा था – काली चाय। उससे बारिन के सारे शक दूर हो गए। सब यादें वापस लौट आईं।

***

बारिन ने उस आदमी को देखा था। और अजीब बात यह थी – ऐसी ही दिल्ली जाने वाली एक ट्रेन के वातानुकूलित डिब्बे में। उस समय वो खुद पटना जा रहा था, अपनी बहन शिप्रा की शादी के लिए। चलने से

तीन दिन पहले उसने घोड़ों की रेस पर पैसे लगाकर सात हज़ार रुपए जीते थे; इसलिए फर्स्ट क्लास में सफर कर रहा था। यह नौ साल पहले की बात थी, 1964 में, उसके मशहूर गायक बनने से काफी पहले। उस आदमी का नाम याद नहीं आ रहा था। शायद 'च' से कुछ था। चक्रवर्ती? चटर्जी? चौधरी?

कंडक्टर चला गया। बारिन को लगा कि अब वो उस आदमी के सामने नहीं बैठ सकता। वो बाहर जाकर गलियारे में खड़ा हो गया, अपने हमसफर से दूर। संयोग तो होता है ज़िंदगी में, पर इस संयोग पर उसे यकीन नहीं हो रहा था।

पर क्या 'च' ने उसे पहचान लिया था? अगर नहीं, तो इसके दो कारण हो सकते थे। या तो उसकी याद्दाश्त कमज़ोर है या फिर इन नौ सालों में बारिन की शक्ल में काफी बदलाव आ गया है। खिड़की के बाहर झांकते हुए वो सोचने लगा कि ये बदलाव क्या हो सकते हैं। मसलन उसका वज़न

काफी बढ़ गया था, इसलिए चेहरा भी शायद भरा-भरा लग रहा होगा। उस समय वो चश्मा नहीं पहनता था, अब पहनने लगा है। और अब मूंछें भी नहीं हैं। मूंछें कब साफ की थीं? अरे हां, बहुत पहले की बात नहीं है। वो हज़रा रोड पर एक सलून में गया था। वहां का नाई नया और नौसिखिया था। दाढ़ी बनाते समय उससे एक तरफ की मूंछें ज़्यादा कट गईं और उनका संतुलन बिगड़ गया। बारिन को पहले तो पता ही नहीं चला। फिर जब दफ्तर में लिफ्ट वाले बातूनी सुखदेव से लेकर बुज़ुर्ग मुनीम, केशव बाबू तक सभी लोग कहने लगे, तो उसने मूंछें ही कटवा लीं। यह चार साल पहले की बात थी। तो मूंछें गईं, उसका चेहरा भी चौड़ा हो गया था और उसे चश्मा भी लग गया था। यह सोचकर उसे थोड़ी सांत्वना मिली और वो अपने डिब्बे में लौट गया।

बेयरा चाय से भरा फ्लास्क लाया और उसे 'च' के सामने रख दिया। बारिन को भी कुछ पीने की इच्छा ! पर उसने अपना मुंह खोलने की नहीं की। अगर 'च' ने उसकी आवाज़ पहचान ली तो?

बारिन सोचना भी नहीं चाह रहा था कि अगर 'च' ने उसे पहचान लिया तो वो उस समय क्या कर बैठेगा! पर फिर, यह सब इस बात पर भी निर्भर करता है कि वो आदमी कैसा है। यदि वह अनिमेश दा की तरह है, तो फिक्र की कोई बात नहीं थी। एक बार, बस में, अनिमेश को लगा कि कोई उनकी जेब काटने की कोशिश कर रहा है। पर शोर मचाने में उन्हें शर्म आ रही थी इसलिए उन्होंने चुपचाप अपना बटुआ दे दिया। उसमें 10-10 रुपए के चार नए नोट थे। बाद में उन्होंने अपने परिवार को बताया, "एक भरी हुई बस में बवाल मचाना जिससे सब मुझे ताकने लगते – नहीं, यह तो मैं नहीं होने दे सकता था।"

क्या यह आदमी भी कुछ-कुछ वैसा ही था? शायद नहीं। अनिमेश दा जैसे लोग मुश्किल से मिलते हैं आजकल। और फिर, इसकी सूरत से भी निश्चिंतता नहीं हो रही थी। उसकी हर बात – घनी भौंवें, चपटी नाक और बाहर निकला हुआ जबड़ा – सबसे यही लग रहा था कि वो अपने हाथ बारिन की गर्दन पर कसने से बिल्कुल नहीं झिझकेगा और पूछेगा, "क्या तुम वही आदमी नहीं जिसने 1964 में मेरी घड़ी चुराई थी? कमीने! मैं नौ साल से तुम्हें ढूंढ रहा हूं। आज मैं तुझे . . . "

लेकिन बारिन ने आगे नहीं सोचा। इस वातानुकूलित डिब्बे में भी उसके माथे पर पसीना चमकने लगा था। बारिन अपनी बर्थ पर पसर गया और बांए हाथ से आंखें ढक लीं। अक्सर आंखों से ही इंसान पहचाना जाता है।

'च' भी अपनी आंखों की वजह से पहचाना गया था।

***

अब उसे पूरी घटना बहुत स्पष्ट रूप से याद आ गई थी। बात सिर्फ 'च' की घड़ी चुराने की नहीं थी। उसने बचपन से जितनी भी चीज़ें चुराईं, वे सभी उसे अच्छी तरह याद थीं। कुछ बिल्कुल मामूली चीज़ें – जैसे पैन (मुकुल मामा का) या फिर एक सस्ता सा सूक्ष्मदर्शी (उसकी कक्षा में पढ़ने वाले अक्षय का) या 'कफ-लिंक्स' का जोड़ा, जो छेनी दा का था और बारिन के किसी काम का नहीं था। उसने उन्हें एक भी बार नहीं पहना। सभी चीज़ें चुराने के पीछे एक ही कारण था कि वे पास में रखी होती थीं और किसी और की थीं।

बारह और पच्चीस साल के बीच बारिन ने कम-से-कम पचास चीज़ें चुराईं और अपने घर में जमा कर ली थीं। इसे चोरी के अलावा क्या कहा जा सकता था? उसमें और एक चोर में यही फर्क था कि चोर जीवन-यापन के लिए चोरी करता है और बारिन आदत से मजबूर होकर। किसी ने कभी उस पर शक नहीं किया था, इसलिए वो कभी पकड़ा भी नहीं गया। बारिन को मालूम था कि यह आदत, बेवजह चीज़ें उठाने की, एक तरह की बीमारी थी। एक बार उसने अपने एक डॉक्टर मित्र से इसका तकनीकी नाम भी सीखा था पर अभी उसे याद नहीं आ रहा था।

पर 'च' की घड़ी के बाद उसने कोई सामान नहीं उठाया था। पिछले नौ सालों में उसे कभी इस बात की इच्छा भी नहीं हुई। उसे पता था कि वो अब इस बीमारी से मुक्त हो चुका है।

'च' की घड़ी चुराने और बाकी चोरियों में प्रमुख अंतर था कि वो घड़ी उसे भा गई थी। स्विटज़रलैंड की बनी एक खूबसूरत घड़ी थी वो; एक नीले रंग के डिब्बे में रखी, जिसे खोलते ही घड़ी एकदम सीधी खड़ी हो जाती थी। उसका अलार्म इतना मधुर था कि सुनकर उठ जाने को जी करे। बारिन ने उस घड़ी को इन नौ सालों में लगातार इस्तेमाल किया, जहां भी गया साथ ले गया। आज भी वो घड़ी मेज़ पर रखे उसके झोले की गहराइयों में दबी हुई थी।

"आप कहां तक जा रहे हैं?"

बारिन चौंक के उठ गया। वह आदमी उसी से बात कर रहा था!

"दिल्ली।"

"जी?"

"दिल्ली।"

पहली बार बारिन ने आवाज़ बदलने के चक्कर में इतने धीरे जवाब दिया कि उस आदमी को सुनाई नहीं दिया।

"क्या आपको यहां ठंड लग रही है? इसलिए आपकी आवाज़ भारी हो

रही है?"

"न-नहीं।"

"ऐसा हो सकता है। अगर धूल-मिट्टी न होती तो मैं तो स्लीपर क्लास में ही सफर करता।"

बारिन ने कुछ नहीं कहा। वो 'च' से नज़र नहीं मिलाना चाहता था, लेकिन दूसरी ओर उसकी अपनी जिज्ञासा उसे मजबूर कर रही थी। क्या 'च' ने उसे पहचान लिया था? नहीं, उसका बर्ताव काफी सामान्य था।

क्या वो जानबूझकर अंजान बन रहा था? पर यह पता लगाने का कोई तरीका नहीं था। आखिर बारिन उसे ठीक से जानता भी तो नहीं था। पिछली बार उसे सिर्फ इतना पता चला था कि उसे काली चाय पसंद है और वो हर स्टेशन पर उतरकर कुछ खाने का सामान ज़रूर खरीदता है। उसकी इस आदत की वजह से बारिन को बहुत-सी स्वादिष्ट चीज़ें खाने का मौका मिला था।

इसके अलावा बारिन ने 'च' की एक और बात पर गौर किया था, जो घड़ी से सीधा संबंध रखती थी।

वे अमृतसर मेल से यात्रा कर रहे थे। वो सुबह पांच बजे पटना पहुंचती थी। ट्रेन के कंडक्टर ने आकर बारिन को साढ़े चार बजे जगाया। 'च' भी आधा जगा हुआ था जबकि उसे दिल्ली जाना था। पटना पहुंचने से तीन मिनट पहले ज़ोर से ब्रेक लगा और ट्रेन रुक गई। क्या कारण हो सकता था? कुछ लोग टॉर्च लिए नीचे घूम रहे थे। मामला कुछ गंभीर नज़र आ रहा था। आखिर में एक गार्ड आया और उसने बताया कि एक बूढ़ा आदमी पटरी पार करता हुआ इंजन के नीचे आ गया था। जैसे ही उसे निकाल लेंगे, ट्रेन चल पड़ेगी।

'च' यह बात सुनकर उत्सुकतावश झट नीचे उतर गया, पायजामा-कुर्ता पहने हुए ही। इसी दौरान बारिन ने 'च' के झोले में से घड़ी निकाली थी। रात को सोने से पहले उसने 'च' को उसमें चाबी भरते देखा था और उसे लालच आ गया था। पर घड़ी उठाने का मौका मिलना मुश्किल था सो उसने खुद को समझा लिया था। लेकिन जैसे ही यह अनायास मौका मिला तो बारिन खुद को रोक नहीं पाया। उस वक्त उसे ऊपर सो रहे आदमी का भी डर नहीं रहा। उसने 'च' के झोले में हाथ डालकर घड़ी निकाली और उसे अपने झोले में डाल लिया। ऐसा करने में उसे 15-20 सैकेंड ही लगे। 'च' करीब पांच मिनट बाद वापस आया।

"बहुत बुरा हुआ! कोई भिखारी था। उसका सिर धड़ से अलग हो गया है। मुझे तो समझ नहीं आता कि इंजन के सामने जाली लगी होने के बावजूद भी कोई गाड़ी के नीचे कैसे आ सकता है। उसका तो काम ही है पटरी पर

पड़ी हर चीज़ को किनारे फेंक देना।"

बारिन पटना में सुरक्षित उतर गया और वहां उसे उसके अंकल मिले। उनकी गाड़ी में बैठते ही उसे जो अटपटा एहसास हो रहा था वो भी गायब हो गया। उसके मन ने उसे समझा दिया कि यह कहानी यहीं खत्म हो गई है। अब उसे कोई नहीं पकड़ सकता। 'च' का दुबारा मिलना लगभग नामुमकिन था।

***

लेकिन किसे पता था कि एक दिन, कई साल बाद, संयोगवश वे दुबारा मिलेंगे? 'ऐसे संयोग से तो कोई भी अंधविश्वासी हो जाए', बारिन ने सोचा।

"आप दिल्ली में रहते हैं? या कलकत्ता में?" 'च' ने पूछा।

बारिन को याद आया कि पिछली बार भी उसने उससे बहुत-से सवाल पूछे थे। बारिन को ऐसे लोगों से नफरत थी जो ज़्यादा ही दोस्ताना बर्ताव करने लगते थे।

"कलकत्ता।" बारिन ने कहा। अरे, यह क्या किया। उसने अपनी सामान्य आवाज़ में जवाब दे दिया। उसे चौकन्ना रहना होगा।

हे भगवान! यह आदमी मुझे इस तरह घूर क्यों रहा है? मुझ में रुचि लेने का क्या कारण हो सकता है? बारिन की नब्ज़ फिर तेज़ी से चलने लगी।

"क्या आपकी तस्वीर हाल ही में किसी अखबार में छपी है?"

बारिन को लगा उसे सच न बताना

पागलपन होगा। ट्रेन में और भी बंगाली लोग थे जो उसे पहचान सकते थे। उसे अपनी असलियत बताने में कोई नुकसान नहीं था। बल्कि अगर वह बता दे कि वह एक प्रसिद्ध गायक है, तो 'च' के लिए उसे अपनी घड़ी चुराने वाला मानना मुश्किल हो जाएगा।

"आपने मेरी तस्वीर कहां देखी?" बारिन ने वापस सवाल किया।

"क्या आप गाते हैं?" एक और प्रश्न आया।

"हां, थोड़ा-बहुत।"

'आपका नाम. . . ?"

"बारिन्द्रनाथ भौमिक।"

'आ . . . हा, अच्छा। बारिन भौमिक। तभी आपका चेहरा पहचाना लग रहा था। आप रेडियो पर गाते हैं, है न?"

"जी।"

"मेरी पत्नी आपका गाना बहुत पसंद करती है। क्या आप दिल्ली किसी शो में गाने के लिए जा रहे हैं?"

"जी।"

बारिन ने तय किया कि उसे ज़्यादा जानकारी नहीं देनी चाहिए। अगर 'हां' या 'ना' से काम चलता है तो और कुछ कहने की ज़रूरत नहीं।

"मैं दिल्ली में किसी भौमिक को जानता हूं। वो वित्त मंत्रालय में हैं – नीतिश भौमिक – क्या वो आपके रिश्तेदार लगते हैं?"

वास्तव में, नीतिश बारिन का चचेरा भाई था। वो अपने सख्त अनुशासन के लिए प्रसिद्ध था। करीबी रिश्तेदार था, पर व्यक्तिगत रूप से बारिन की उससे खास दोस्ती नहीं थी।

"नहीं। मैं उन्हें नहीं जानता।"

बारिन ने यहां झूठ बोला। काश, यह आदमी सवाल पूछना बंद कर दे। वो इतना कुछ क्यों जानना चाहता था?

शुक्र है, खाना आ गया! संभवतः अब तो इसके सवालों की बौछार बंद होगी, कम-से-कम कुछ देर के लिए।

ऐसा ही हुआ। 'च' को खाना पसंद था। वो ध्यान से, चुपचाप खाना खाने लगा। बारिन अब थोड़ा आराम से बैठ गया पर फिर भी पूरी तरह तसल्ली नहीं हुई। उन्हें अब 20 घंटे एक साथ गुज़ारने थे। याद्दाश्त इतनी अजीब चीज़ है। कौन कह सकता है किस चीज़ से – एक नज़र, एक शब्द, एक संकेत से कोई पुरानी भूली हुई याद वापस लौट आए, ताज़ा हो जाए?

मसलन, काली चाय। बारिन को विश्वास था कि अगर 'च' वो दो शब्द नहीं कहता, तो वो 'च' को पहचान नहीं पाता। अगर 'च' भी उसकी किसी बात से उसे पहचान ले तो?

सबसे अच्छा हो, अगर वो न कुछ कहे, न कुछ करे। किताब में अपना मुंह छुपाते हुए, बारिन बर्थ पर लेट गया। जब उसने पहला अध्याय पढ़ लिया तो धीरे से मुंह घुमाकर 'च' की तरफ देखा। वो शायद सो रहा था। उसके हाथ में पकड़ी पत्रिका, 'इलस्ट्रेटेड वीकली' नीचे गिर गई थी।

उसकी आंखों पर तो हाथ रखा हुआ था पर छाती के गिरने उठने से लग रहा था कि वो गहरी नींद में है। बारिन खिड़की के बाहर देखने लगा। खुले मैदान, पेड़, छोटी-छोटी झोंपड़ियां, बिहार की बंजर ज़मीन का नज़ारा उसकी आंखों के सामने से गुज़रा। कांच की खिड़की में से पहियों की आवाज़ बहुत धीमी आ रही थी। ऐसा लग रहा था जैसे कहीं दूर ढोल बज रहे हों – धा...धिनक...ना... धिनक... धा...धिनक...ना...धिनक...।

इसके साथ अब एक और आवाज़ मिल गई: 'च' के खर्राटों की।

बारिन को अब थोड़ी शांति हुई। वो नज़रूल का एक गीत गुनगुनाने लगा। उसकी आवाज़ अच्छी ही लग रही थी। उसने फिर अपना गला साफ किया और थोड़ी ज़ोर से गाने लगा। लेकिन उसे तुरन्त रुक जाना पड़ा।

डिब्बे में कुछ और आवाज़ भी आ रही थी। बारिन चौंककर चुप हो गया। यह उसकी घड़ी की आवाज़ थी। उस स्विस घड़ी का अलार्म किसी वजह से बज उठा था; और अब लगातार बज रहा था। बारिन से हाथ-पांव भी नहीं हिलाए गए, डर के मारे मानों अकड़ गए हों। वो 'च' को एकटक देखता रहा। 'च' ने बांह हिलाई। बारिन सकते में आ गया।

'च' अब उठ चुका था। उसने आंखों से हाथ हटाया। 'क्या गिलास की आवाज़ है? क्या आप उसे हटा सकते हैं? दीवार से टकरा रहा है शायद।'

जैसे ही बारिन ने गिलास को हटाया आवाज़ भी बंद हो गई। गिलास को मेज़ पर रखने से पहले बारिन ने पानी पी लिया। उसके गले को राहत मिली, पर वो दोबारा गाने के मूड में कतई नहीं था।

हज़ारीबाग रोड पहुंचने से थोड़ा पहले चाय आई। दो कप गरम चाय और अन्य सवालों की अनुपस्थिति में बारिन फिर थोड़ा शांत हुआ। उसने बाहर देखा और गुनगुनाने लगा। जल्द ही वो अपने आसपास के हालात और खतरे को भूल गया।

गया स्टेशन पर 'च' उतरा जैसे कि उसका स्वभाव था, और मूंगफली के दो पैकेट लेकर लौटा। एक पैकेट उसने बारिन को दिया। बारिन ने पूरा पैकेट बहुत स्वाद से खाया।

जब गाड़ी चली तो सूरज ढल चुका था। 'च' ने बत्ती जलाई और पूछा,

"ट्रेन लेट चल रही है? आपकी घड़ी में कितना बजा है?"

बारिन ने पहली बार ध्यान दिया कि 'च' ने घड़ी नहीं पहनी थी। उसे कुछ आश्चर्य हुआ और उसके चेहरे पर भी यह भाव दिखा। फिर उसे 'च' का सवाल याद आया। उसने अपनी कलाई पर बंधी घड़ी में समय देखा और 'सात पैंतीस' जवाब दिया।

"फिर तो तकरीबन ठीक ही चल रही है।"

"हां।"

"मेरी घड़ी आज सुबह टूट गई। एच. एम. टी की थी. . . बिल्कुल सही समय दिखाती थी. . . पर आज सुबह किसी ने मेरी चादर इतनी ज़ोर से खींची कि घड़ी ज़मीन पर गिरकर टूट गई और. . . ।"

बारिन ने जवाब नहीं दिया। घड़ियों का कोई भी ज़िक्र उस चोरी का सबूत पेश करने जैसा था।

"आपकी घड़ी कौन-सी है?" 'च' ने पूछा।

"एच. एम. टी.।"

"सही वक्त दिखाती है?"

"हां।"

"दरअसल, घड़ियों के मामले में मैं हमेशा ही बदकिस्मत रहा हूं।" बारिन ने जम्हाई लेने की कोशिश की, सिर्फ यह दिखाने के लिए कि वो खास ध्यान नहीं दे रहा, पर असफल रहा। उसके जबड़े को भी जैसे लकवा मार गया।

वो मुंह भी नहीं खोल पाया, पर उसके कान बखूबी काम करते रहे। 'च' जो कुछ भी कह रहा था उसे सुनना ही पड़ा।

"मेरे पास कभी एक स्विस घड़ी होती थी, सोने की। मेरा एक दोस्त जेनेवा से लाया था। अभी एक ही महीना इस्तेमाल की थी और ट्रेन में साथ ले जा रहा था। ऐसे ही दिल्ली की ट्रेन थी, वातानुकूलित डिब्बा था। हम दो लोग थे – मैं और एक बंगाली आदमी। पता है उसने क्या किया? हिम्मत तो देखो। मेरी गैरमौजूदगी में जब मैं बाथरूम गया होऊंगा – उसने मेरी घड़ी चुरा ली। इतना शरीफ लगता था। पर शायद मेरी खुशकिस्मती थी जो उसने मुझे सोते में मारा नहीं। उसके बाद से मैंने ट्रेन में सफर करना बंद कर दिया। इस बार भी हवाई जहाज़ से ही जाता, लेकिन पाइलट्स की हड़ताल ने सब गड़बड़ कर दिया। "

बारिन भौमिक का गला सूख गया था और हाथ सुन्न पड़ गए थे। पर उसे पता था कि ऐसी घटना सुनने के बाद अगर वो कुछ न कहे, तो अजीब लगेगा। बल्कि, उसे शक भी हो सकता था। बहुत कोशिश कर उसने ज़बरदस्ती कहा, "आप... आपने उसे ढूंढा नहीं?"

"हंह! चुराई गई कोई चीज़ सिर्फ ढूंढने से मिल सकती है? पर काफी

समय तक मैं उस आदमी की शक्ल नहीं भूला। अभी भी धुंधली-सी याद है। वो न तो गोरा था न ही काला, मूंछें थीं और आपके ही जितना लंबा था, पर दुबला था। अगर मैं उसे दुबारा मिला तो ऐसा सबक सिखाऊंगा कि सारी ज़िन्दगी याद रखेगा। मैं एक समय बॉक्सर था – लाइट हैवीवेट चैंपियन। उस आदमी की खुशकिस्मती है कि हम फिर मिले नहीं।"

बारिन को अब उस आदमी का पूरा नाम याद आ गया। चक्रवर्ती। पुलक चक्रवर्ती। अजीब बात है! जैसे ही उसने बॉक्सिंग की बात की, बारिन को उसका नाम ऐसे याद आया जैसे टी. वी. के पर्दे पर कोई नाम हो। पिछली बार पुलक चक्रवर्ती ने अपनी बॉक्सिंग के बारे में काफी बात की थी। लेकिन नाम याद करके भी क्या? चोरी तो उसने की थी। और अब उसका भार उठाना नामुमकिन हो गया था। अगर वो उसे जाकर सब बता दे? और फिर घड़ी लौटा दे तो? जो कि वहीं रखी थी झोले में ... इतनी पास।

नहीं, नहीं। पागल तो नहीं हो रहा कहीं? ऐसा सोच भी कैसे सकता है? वो एक प्रसिद्ध गायक था। वो कैसे मान ले कि उसने इतनी गिरी हुई हरकत की है?

उसके नाम पर बुरा असर नहीं पड़ेगा? उसके चाहने वाले क्या सोचेंगे? और इस बात की क्या गारंटी है कि यह आदमी पत्रकार या मीडिया से संबंधित नहीं है? नहीं, अपनी गलती मानने का तो सवाल ही पैदा नहीं होता। और शायद उसकी कोई ज़रूरत भी नहीं थी। शायद वो उसे यूं ही पहचान लेगा। पुलक चक्रवर्ती उसे अजीब तरह से देख रहा था।

दिल्ली अभी भी सोलह घंटे दूर थी। उसके पकड़े जाने की पूरी-पूरी संभावना थी। बारिन के मन में एक तस्वीर दौड़ गई – उसकी मूंछें वापस आ गई हैं, चेहरा भी दुबला हो गया है, चश्मा गायब हो गया है। पुलक चक्रवर्ती बहुत ध्यान से उस चेहरे को देख रहा था जो उसने नौ साल पहले देखा था। उसकी हल्की भूरी आंखों में जो आश्चर्य था वो धीरे-धीरे गुस्से में बदलता नज़र आ रहा था। उसके मुंह पर एक निर्दयी मुस्कान आ गई थी, मानो कह रहा हो, "आ हा! तुम वही आदमी हो, है न? मैं इतने साल तुम्हें पकड़ने की ताक में था। मैं अब अपना बदला ले पाऊंगा. . . "

रात दस बजे तक बारिन को कंपकंपी के साथ काफी तेज़ बुखार आ गया। उसने अटेंडेंट को बुलाकर एक और कंबल मंगवाया। फिर उसने खुद को सर से पांव तक दोनों कंबलों से ढंक लिया और बिल्कुल सीधा लेट गया। पुलक चक्रवर्ती ने कूपे का दरवाज़ा

बंद किया और लाइट बंद करते हुए बारिन से कहा, "आप शायद ठीक नहीं हैं। मेरे पास एक बहुत अच्छी दवाई है। लो ये दो गोली ले लो। आपको वातानुकूलित डिब्बे में सफर करने की आदत नहीं है, न?"

बारिन ने गोलियां निगल लीं। ऐसी हालत में शायद चक्रवर्ती भी उसे कोई कड़ी सज़ा न दे। पर बारिन ने एक चीज़ तय कर ली थी। उसे वो घड़ी उसके सही हकदार के झोले तक पहुंचानी थी। और अगर हो सके तो आज रात ही यह काम करना था। पर जब तक उसका बुखार न उतरे वो हिल भी नहीं सकता था। अभी भी उसे बीच-बीच में कंपकंपी हो रही थी।

पुलक ने अपने पास की बत्ती जलाई। उसके हाथ में किताब खुली थी। पर क्या वो पढ़ रहा था या सिर्फ उसे घूरते हुए कुछ और सोच रहा था? पन्ना क्यों नहीं पलट रहा था? कुछ पन्ने पढ़ने में कितना समय लगता है?

अचानक बारिन ने देखा कि पुलक अब किताब को नहीं देख रहा। उसने मुंह थोड़ा मोड़ लिया था और वो अब बारिन की तरफ देख रहा था। बारिन ने आंखें मूंद ली। बहुत देर बाद, उसने सावधानी से एक आंख खोली और चक्रवर्ती की ओर देखा। हां, वो अभी भी बारिन को बहुत ध्यान से देख रहा था। बारिन ने झट से आंखें बंद कर ली। उसका दिल

मेंढ़क की तरह कूद रहा था, पहिए की लय से मेल खाता – लप डप, लप डप, लप डप......।

एक हल्की आवाज़ आई और उसे लगा कि बत्ती बुझा दी गई है। थोड़ा आश्वस्त होकर उसने दोनों आंखें खोली। दरवाज़े की एक दरार में से बाहर से रोशनी आ रही थी। बारिन ने देखा पुलक चक्रवर्ती अपनी किताब बारिन के झोले के साथ मेज़ पर रख रहा था। फिर उसने कंबल ओढ़ा, बारिन की ओर करवट ली और ज़ोर की जम्हाई ली।

बारिन के दिल की धड़कन धीरे-धीरे ठीक हो गई। हां, कल सुबह वह घड़ी ज़रूर लौटा देगा। उसने देखा पुलक की अटैची में ताला नहीं लगा था। थोड़ी देर पहले ही उसने बदलने के लिए कपड़े निकाले थे।

बारिन का कांपना बंद हो गया। शायद दवा का असर हो रहा था। कौन-सी दवा थी ये? उसने तो यूं ही निगल ली थी कि वो दिल्ली में गा पाए। श्रोताओं की तालियों से तो वो वंचित नहीं रहना चाहता था। पर क्या उसने सही किया? अगर वो गोलियां.... ?

नहीं, नहीं उसे यह सब नहीं सोचना चाहिए। दीवार से गिलास टकराने की घटना ही काफी थी। बेशक, ये सभी अजीब वाकयात सिर्फ उसके बीमार दिमाग की उपज थे। कल, उसे इसका इलाज ढूंढना था। साफ मन के बिना उसकी आवाज़ साफ नहीं हो सकती और उसका कार्यक्रम बिल्कुल असफल हो जाएगा। बंगाली एसोसिएशन....

सुबह चाय के प्यालों के खनकने से बारिन उठ गया। उसके लिए नाश्ता आया: ब्रेड, मक्खन, आमलेट और चाय। ये सब उसे खाना चाहिए क्या? क्या उसे, अभी भी हल्का-सा बुखार नहीं था? नहीं, अब नहीं था। बिल्कुल ठीक लग रहा था। कितनी अच्छी दवाई थी! पुलक चक्रवर्ती के प्रति आभारी था वो।

पर वो है कहां? शायद बाथरूम में। या शायद बाहर दरवाज़े के पास। बारिन ने बाहर जाकर देखा। वहां कोई नहीं था। पुलक कब गया था? क्या उसे मौके का फायदा उठाना चाहिए?

बारिन ने कोशिश की पर सफल नहीं हुआ। घड़ी अपने झोले से निकाली और पुलक की अटैची निकालने के लिए झुका ही था कि उनका हमसफर तौलिया और शेविंग का सामान लेने के लिए अंदर आ गया। बारिन ने घड़ी को दाएं हाथ में छुपा लिया, और सीधा होकर बैठ गया।

"आप कैसे हैं? ठीक हैं?"

"जी, शुक्रिया। अ. . . क्या आप इसे पहचानते हैं?"

बारिन ने मुट्ठी खोली। हाथ में घड़ी थी। उसमें एक अजीब-सी दृढ़ता आ गई थी। वो अपनी पुरानी चोरी की आदत पर तो काबू पा चुका था। पर यह लुका-छुपी का खेल था, यह भी तो एक तरह का धोखा ही है? इतनी टेंशन, इतनी अनिश्चितता, करूं या न करूं की दुविधा, यह पेट में अजीब-सा एहसास, सूखा गला, धक-धक करता दिल, ये सब बीमारी के ही लक्षण थे न? इनसे भी उबरना ज़रूरी था। इसके बिना तो मन की शांति हो ही नहीं सकती थी।

पुलक चक्रवर्ती ने अभी तौलिये से अपने कान साफ करने शुरू किए थे। घड़ी को देखते ही वो वहीं बुत बन गया और उसके हाथ का तौलिया कान पर ही रह गया।

बारिन ने कहा, "हां, मैं वही आदमी हूं। थोड़ा मोटा हो गया हूं, मूंछें मुंडवा दी हैं और चश्मा लगाने लगा हूं। उस समय मैं पटना जा रहा था और आप दिल्ली। यह बात 1964 की है। याद है वो आदमी जो हमारी गाड़ी के नीचे आ गया था? और आप बाहर देखने गए थे? बस आपकी गैरहाज़री में मैंने यह घड़ी ले ली।"

पुलक अब सीधा बारिन की आंखों में देख रहा था। बारिन ने देखा कि उसकी आंखें बड़ी हो रही थीं, मुंह खुला था – जैसे वो कुछ कहना चाह रहा हो, पर आवाज़ नहीं निकल पा रही हो।

बारिन फिर बोला, "दरअसल, मुझे एक बीमारी थी। मतलब मैं चोर नहीं हूं। उसके लिए एक नाम है जो मैं अभी भूल रहा हूं। वैसे अब तो मैं बिल्कुल ठीक हूं। मैंने आपकी यह घड़ी इतने साल इस्तेमाल की है और अब इसे अपने साथ दिल्ली ले जा रहा था। चूंकि आप मिल गए, चमत्कार ही है, तो मैंने सोचा मैं इसे वापस ही कर दूं। मुझे उम्मीद है. . आपको. . . अ. . . मुझसे कोई नाराज़गी तो नहीं है न?"

पुलक चक्रवर्ती हल्के-से 'धन्यवाद' के अलावा कुछ नहीं कह सका। वो अभी भी घड़ी को ही देख रहा था, जो अब उसके हाथ में थी।

बारिन ने अपना टूथब्रश, टूथपेस्ट और शेविंग का सामान उठाया, फिर कील पर टंगा तौलिया उतारा और बाथरूम में चला गया। जैसे ही उसने दरवाज़ा बंद किया वो गुनगुनाने लगा। उसे यह सुनकर खुशी हुई कि उसकी आवाज़ पूरी तरह लौट आई थी।

***

उसे तीन मिनट लगे, एन. सी. भौमिक से संपर्क करने में। फिर एक परिचित आवाज़ उसके कानों में गूंजने लगी।

"हेलो।"

"नीतिश दा? बारिन बोल रहा हूं।"

"अच्छा, तो तुम पहुंच गए? मैं शाम को आ रहा हूं तुम्हें सुनने। तुम भी अब मशहूर हो गए हो, न? किसने सोचा था? खैर, फोन कैसे किया?"

"क्या आप किसी पुलक चक्रवर्ती को जानते हैं? वो कॉलेज में आपके साथ था। बॉक्सिंग करता था।"

"कौन? अपना पिंचू।"

"पिंचू ...?"

"हां, अरे जो दिखता था वो उठा लेता था। पेन, लाइब्रेरी की किताबें, टेनिस के रैकट। उसी ने मेरा पहला रोनसन रैकट चुराया था। अजीब-सी बात है, क्योंकि ऐसा नहीं है कि उसे कोई कमी हो। उसका बाप अमीर आदमी था। उसे किसी तरह की बीमारी थी।"

"बीमारी!"

"हां, तुमने कभी नहीं सुना? इसे क्लेपटोमेनिया कहते हैं।"

बारिन ने फोन नीचे रखा और अपनी खुली अटैची को देखा। वो अभी होटल पहुंचा था और सामान निकालने लगा था। नहीं, इसमें शक नहीं था। कुछ चीज़ें उसमें से गायब थीं। थ्री कासल सिगरेट का पैकेट, जापानी दूरबीन, पांच सौ के नोटों से भरा बटुआ।

क्लेपटोमेनिया – बारिन यह शब्द भूल गया था। अब तो वो उसके दिमाग में उकेरा रहेगा, हमेशा। अब वो उसे कभी नहीं भूलेगा।

सत्यजीत रे: प्रसिद्ध फिल्म निर्देशक। बच्चों के लिए फिल्म बनाने के अलावा बच्चों के लिए फंतासी और रोमांचकारी साहित्य भी लिखा है।

हिन्दी अनुवाद: शिवानी बजाज: शैक्षिक गतिविधियों में रुचि। शौकिया रूप से अनुवाद करती हैं।

चित्र: विप्लव शशि: बड़ोदरा में चित्रकला का अध्ययन कर रहे हैं।

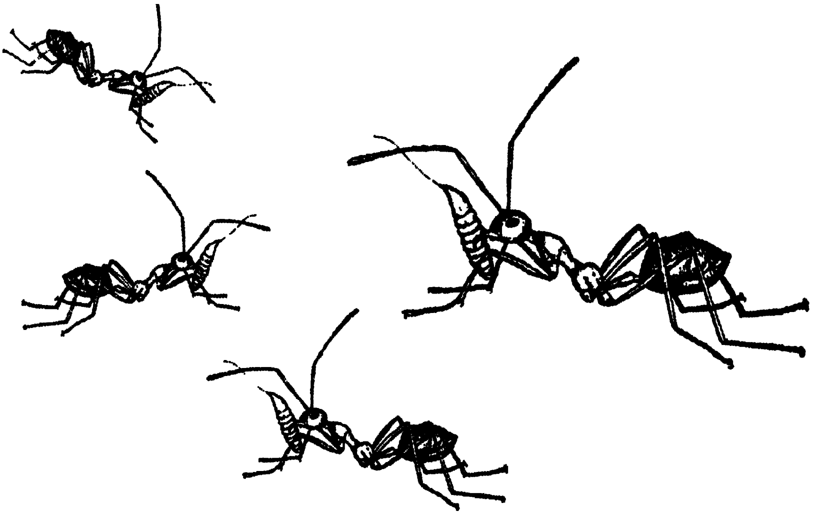

चींटियों का पत्तीघर

के. आर. शर्मा

मैं पिछले कुछ समय से चींटियों की एक खास किस्म के बारे में जानकारी जुटा रहा था। इन चींटियों को मैं बचपन से ही अपने गांव में देख रहा हूं। बचपन के गर्मियों के वो दिन जब आम के पेड़ों पर कच्ची केरियां तोड़ने के लिए चढ़ते थे तब अक्सर लाल रंग की चींटियां बुरी तरह से काट लेती थीं और जहां काटा हो वहां जलन काफी होती थी। तब इतना पता था कि ये चींटियां इन्हीं पेड़ों पर पत्तों को चिपकाकर, कागज़ की पुड़िया की तरह घरौंदा बनाती हैं और उसमें रहती हैं।

आखिर कैसे घोंसला बनाती होंगी ये चींटियां? इस सवाल का जवाब तब न तो स्कूल के शिक्षक ने दिया, न ही माता-पिता ने। खैर तो बात

आई-गई हो गई। लेकिन हाल ही में मुझे इस चींटी के दर्शन हुए तो फिर वही सवाल मेरे दिमाग में कौंधा। इसके बारे में जो जानकारी मिली वो वाकई काफी रोमांचक है।

आपने भी आम के पेड़ों पर पाई जाने वाली इस लाल चींटी को ज़रूर देखा होगा। स्थानीय भाषाओं में इसे अलग-अलग नाम से जाना जाता है। मालवा के लोग इसे दूध मकोड़ी के नाम से जानते हैं तो होशंगाबाद के आसपास इसे बरबूटा कहते हैं। अंग्रेज़ी में इसे 'वीवर आंट' यानी जुलाहा चींटी कहा जाता है। नामों की इस

बरबूटा चींटियों में घरौंदा बनाने के काम को मज़दूर चींटियां अंजाम देती हैं। ये मज़दूर रानी चींटी द्वारा दिए अंडों से निकले लार्वा का इस्तेमाल पत्तियों को चिपकाने में करते हैं। लार्वा अपनी इस अवस्था के दौरान रेशम का निर्माण करते हैं। कुछ अन्य मज़दूर चींटियां पत्तों को पकड़कर पास-पास लाने में मदद करती हैं। और कुछ मज़दूर चींटियां अपने मुंह में पकड़े लार्वा को दो पत्तियों के बीच रखकर थोड़ा दबाती हैं, जिससे लार्वा से निकले रेशम से पत्तियां चिपक जाती हैं।

यहां पत्तियों का घरौंदा लगभग बन गया है। श्रमिक चींटियां अपने मुंह में पकड़े लार्वा की मदद से पत्तियों को चिपकाती जा रही हैं। जल्द ही बरबूटा का एक शानदार घरौंदा तैयार हो जाएगा।

चर्चा में यह भी बता दें कि जीव वैज्ञानिक इसे Occophylla कहते हैं। इसका मतलब है पत्तियों से घर बनाने वाला।

ये चींटियां पत्तियों को आपस में चिपका-चिपका कर अपना घर बनाती हैं। पत्तियों को चिपकाने के लिए ये एक पतले किन्तु मज़बूत रेशम के धागे का इस्तेमाल करती हैं। जब मुझे यह पता चला कि पत्तियों को जोड़ने के लिए चींटी रेशम का उपयोग करती है तो मेरी समस्या और भी बढ़ गई। मुझे इस बात की जानकारी है कि संपूर्ण जीव-जगत में मकड़ी ही एक मात्र जीव है जो अपनी वयस्क अवस्था में रेशम का निर्माण करता है। कीटों में, खासकर तितली और पतिंगों में, अपने जीवन-चक्र की लार्वा से प्यूपा बनने की स्थिति में ही रेशम का निर्माण होता है। उसके बाद प्यूपा रेशम का खोल ओढ़कर पड़ा रहता है, जब तक कि अगली अवस्था की तैयारी पूरी न

हो जाए। इसका मतलब यह हुआ कि वयस्क चींटी घोंसला बनाने के लिए आवश्यक रेशम का जुगाड़ कहीं और से करती होगी।

सबसे दिलचस्प मामला तो यह है कि ये चींटियां अपने लार्वा को एक औज़ार के रूप में इस्तेमाल करती हैं। कई सारे लाल रंग के चींटे जो वास्तव में श्रमिक होते हैं अपने मुंह में सफेद रंग की कोई चीज़ लिए दिखाई देते हैं। यह 'सफेद रंग का कुछ' मादा चींटी द्वारा दिए गए अंडे होते हैं। अंडों में से लार्वा निकलते हैं। ये लार्वा अपने आप तो कुछ नहीं करते लेकिन इनकी एक खूबी है कि ये रेशम का निर्माण कर सकते हैं।

है न मज़ेदार बात कि पक्षी अंडे देने के पहले घोंसला बनाते हैं। खुद माता-पिता सामग्री इकट्ठा करके घोंसला बनाते हैं। मधु-मक्खियों में भी वयस्क ही अपने शरीर में मोम का निर्माण करके एक मज़बूत छत्ता बनाते हैं; लेकिन बरबूटा की तो बात ही कुछ और है।

बरबूटा चींटियों में घरौंदा बनाने के काम को अंजाम देती हैं मज़दूर चींटियां। मज़दूर चींटियां अपने मुंह में लार्वा को दबाए पत्तों को चिपकाने का काम शुरू करती हैं। इस दौरान कुछ अन्य श्रमिक चींटियां पत्तों को पकड़कर पास-पास लाने में मदद करती हैं। अब लार्वा जो कि श्रमिक चींटी के मुंह में है, वो अपने मुंह से सफेद रंग का चिपचिपा पदार्थ छोड़ने लगता है। लार्वा मुंह में से यह सफेद रंग का पदार्थ वैसे ही निकालता है जैसे गोंद की शीशी को दबाने पर गोंद निकलती है। और इसी चिपचिपे पदार्थ से पत्तों को फौरन चिपकाया जाता है। यह सफेद रंग का पदार्थ वास्तव में रेशम होता है जो हवा के संपर्क में आते ही सूख जाता है।

बरबूटा चींटियों में मज़दूर चींटियां भी दो तरह की होती हैं – एक वे जो पत्तियों को बाहर से पकड़कर उनके किनारों को सटाकर रखती हैं तथा दूसरी वे जो लार्वा को मुंह में दबाकर पत्तों को चिपकाने का काम करती हैं। यह सारा काम एक मशीन की तरह होता है। पत्तों को चिपकाने में चींटियों की फौज लगी रहती है।

ये चींटियां आम के अलावा जामुन, महुआ, गोंदी, करंद, शीशम आदि के पेड़ों पर भी पाई जाती हैं। ये वही चींटियां हैं जिनका उपयोग बस्तर के आदिवासी चटनी के रूप में करते हैं – कहते हैं काफी स्वादिष्ट होती है वो चटनी!

के. आर. शर्मा: एकलव्य के होशंगाबाद विज्ञान शिक्षण कार्यक्रम से जुड़े हैं। उज्जैन में रहते हैं।
फोटोग्राफ: के. आर. शर्मा।

12741